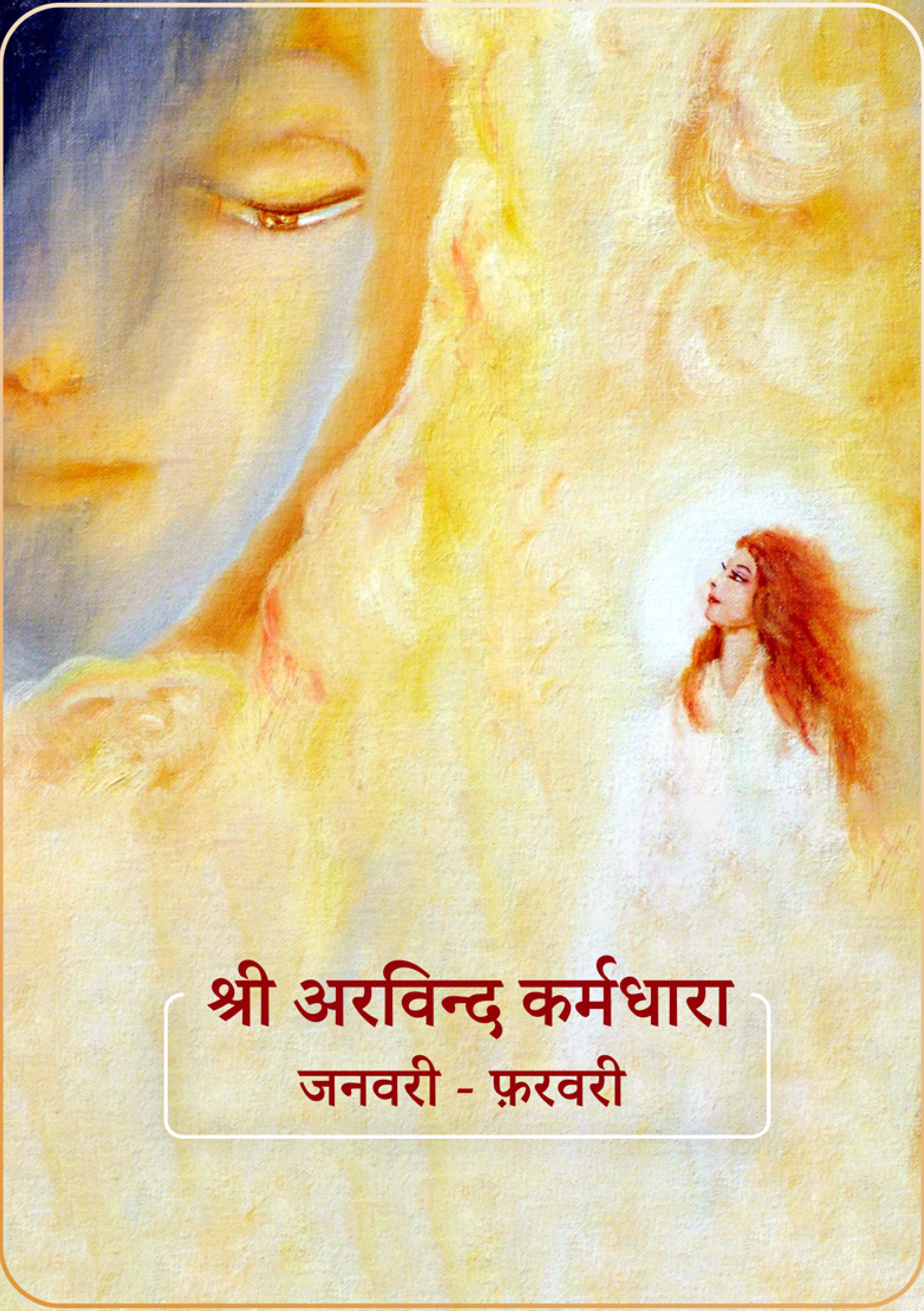

श्री अरविन्द कर्मधारा

जनवरी - फ़रवरी

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम

दिल्ली शाखा का मुखपत्र

जनवरी-फ़रवरी 2023

अंक -1

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन

अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

सुश्री तारा जौहर, विजया भारती

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

प्रार्थना

वर दो हे प्रभु कि मैं हो सकूँ एक अग्नि शिखा के समान,
जो प्रकाश देती है और उष्मा से भरपूर है।
हो सकूँ एक शीतल झरने के समान,
जो विश्व की तृष्णा करता है शान्त,
और एक वृक्ष की भाँति दे सकूँ सुरक्षा की छाँव।
ओह मनुष्य कितने व्यथित और अज्ञान है।
उन्हें आवश्यकता है एक महत् सहायकता की।
स्वामी तुममें मेरा विश्वास एवं निर्भरता अब,
हो रहे हैं दिन पर दिन अधिक दृढ़ एवं पुष्ट।
मेरे हृदय में तुम्हारे प्रेम का प्रकाश हो रहा है
अधिक उज्ज्वल एवं भरपूर
और अब मैं तुम्हारे और अपने व्यक्तित्व के बीच,
कहूँ सम्पूर्ण पृथ्वी के बीच नहीं खींच
सकती कोई विभेद की रेखा
प्रभु, तुम्हारा प्रेम अनन्त है, अनुपम है तुम्हारा सत्य,
और तुम्हारा शक्तिशाली प्रेम ही करेगा इस विश्व की रक्षा।

प्रिय पाठकों ,

नव वर्ष 2023 की शुभकामनाओं के साथ 'श्री अरविंद कर्मधारा' का प्रथम अंक आपके सामने प्रस्तुत है । नव वर्ष के प्रति श्री मां की प्रार्थनाएं, नए साल के लिए उनके संदेश हमारे सामने इस सत्य को उजागर करते हैं कि हर नया साल, हर नया दिन , बल्कि हर नया पल हमारे लिए कितना महत्वपूर्ण होता है, रूपांतर योग के पथ के पथिकों के लिए , उनके जीवन का प्रत्येक मुहूर्त, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण, भागवत कृपा की छत्रछाया में कभी भी ,कोई भी चमत्कार दिखा सकता,यह आशा उन्हें हर समय अपने अंदर बनाए रखनी चाहिए । फरवरी का महीना श्री मां के जन्म की पावन तिथि के साथ हमारे जीवन में उल्लास- उमंग- आशा के साथ एक दृढ़ आस्था, विश्वास और समर्पण- भाव की प्रेरणा बन जाता है । श्री मां हमारी भगवती मां है किंतु उनके लिए हमारा प्रेम अक्सर हमारे मन से इस बात को विस्मृत कर देता है और हम उनसे उन्हीं अपेक्षाओं से जुड़े रह जाते हैं ,जैसे अपनी भौतिक जननी के साथ। जहां तक प्रेम की निकटता की बात है यह बहुत ही स्वाभाविक है और इसका पूरा श्रेय श्रीमां के ममत्व को जाता है ,किंतु हमारी सचेतनता और सजगता इस बात में होना अनिवार्य है कि वह साधारण भौतिक जननी नहीं बल्कि दिव्य शक्ति स्वरूपा भगवती मां है, यह बात इसलिए भी आवश्यक बन जाती है क्योंकि भगवती की कृपा तले जीवन बिताते समय हमारे भी कुछ दायित्व हैं । हमें उनकी दी हुई शिक्षा , हमसे उनकी अपेक्षाओं के प्रति कृत संकल्प होना जरूरी हो जाता है । श्रीमां का प्रत्येक शब्द एक सूर्य किरण है जिसके प्रकाश में हम अपने जीवन का समस्त तमस दूर कर दिव्य आलोक की ओर अग्रसर हो सकते हैं ,किंतु इसके लिए हमारी सजग- सचेतन -चेष्टा और दृढ़ संकल्प के साथ हमारा संपूर्ण समर्पण एक अनिवार्य शर्त है।

श्री अरविंद कहते हैं -

" तुम्हें दिव्य और अनंत मां के प्रति आत्मसमर्पण करना ही है , चाहे वह जितना ही कठिन क्यों ना हो , हमारे लिए एकमात्र फल दाय क साधन है और वही हमारा एकमात्र स्थाई आश्रय है ।मां के प्रति आत्मसमर्पण करने का अर्थ यह है कि हमारी प्रकृति उनके हाथों का चित्र और हमारी अंतरात्मा उनकी गोद का बालक बन जाए । माताजी का प्रेम हमें नए अंतर्दृष्टि व आध्यात्मिक ग्रहण शक्ति देता है । माताजी की चेतना के प्रति खुलना उनके प्यार व उनके प्रकाश की ओर उन्मुख होना, चाहे वह भौतिक रूप से हमारे निकट हों या नहीं हमारे जीवन का सर्वोत्तम उपहार है। श्रीमां के प्रेम एवं संरक्षण में दृढ़ विश्वास रखो और अन्य हर उस सुझाव व प्रभाव का अविश्वास करो जो इसका विरोध करता प्रतीत हो। उस भावना प्रवृत्ति और प्रेरणा का तुरंत तिरस्कार करो जो तुम्हें मां से दूर खींचती हो । मां के प्रति तुम्हारे संबंध आंतरिक सामीप्य और विश्वास को आघात पहुंचाती हो। बाहरी संकेतों , प्रतीकों एवं लक्ष्यों पर ज्यादा जोर मत दो। उनके विषय में तुम्हारा अल्प बोध तुम्हें आसानी से गुमराह कर सकता है । अपने को सदा मां की ओर खुला रखो । अपनी आंतरिक भावना में उनके समीप रहो तब तुम उन्हें अपने निकट ही प्रतीत करोगे और उन संकेतों को पाओगे जो वह तुम्हें दे रही हैं और जिन पर तुम्हारे लिए कार्य कर रही हैं।"

हमें नलनी के इन शब्दों को दोहराते रहना चाहिए -

"हम उस महिमामयी मां भगवती के बालक हैं ,उनके इस रूपांतर कार्य में हमारा क्या योगदान हो, ताकि हम भी उस दिव्य साक्षात के अधिकारी बन सकें जो मां ने साधा है एवं प्रकट किया है ,यही हमें जानना है ।मां ने स्वयं हमारे संकल्प की विधा का संकेत देते हुए एक बार कहा था - 'तुम्हें संपूर्ण अस्तित्व एवं दृढ़ निश्चय के साथ एक ही संकल्प के प्रति अपने को अधिकाधिक एकाग्र एवं केंद्री भूत करना है और वह संकल्प है प्रभु के भव्य कार्य की पूर्ण उपलब्धि ।'

परिस्थितियां इस समय कुछ अधिक कठिन हैं जिसकी चेतावनी देते हुए मां ने कहा था कि इस साहसिक लक्ष्य को पाने के लिए एक वीर योद्धा बनना होगा।

अब जबकि मां देह रूप में हमारे बीच नहीं हैं हम उनके परित्यक्त बालकों के समान स्वयं को महसूस कर रहे हैं, नहीं समझ पा रहे हैं कि हम क्या करें, हम क्या बनें। क्या हम योद्धा एवं शूरवीर से भी अधिक महान बनें? या क्या हम योगी बनें? योगी वह है जिसके पास दिव्य दृष्टि या मातृ - चेतना हो ,और हम जानते हैं कि अपने अथक प्रयत्नों के बावजूद योगी बनना आसान नहीं है, तो मैं तुम्हें एक अन्य विकल्प सुझाता हूं, यह विकल्प है ऐसा है जिसके द्वारा एक दूसरे ही क्षेत्र में छलांग लगाना है -
बालक बनो , मां के अपने बालक ,निर्दोष बालक !

प्रार्थना और ध्यान में माताजी ने 25 सितंबर 1914 ईस्वी को लिखा था -

'एक नई ज्योति पृथ्वी पर फूटेगी,
एक नया जगत उत्पन्न होगा
और दिए हुए आश्वासन पूरे होंगे ।

तदनंतर लगभग 40 वर्षों के बाद 29 फरवरी 1914 से 29 मार्च 1956 ईस्वी के बीच उन्होंने अपने उक्त घोषणा में कुछ परिवर्तन किया और लिखा --

'एक नई ज्योति पृथ्वी पर उदित हुई है ,
एक नया जगत जन्म ले चुका है
और दिए हुए आश्वासन पूरे हुए हैं।'

क्रिया का यह कार्यकाल परिवर्तन वस्तु स्थिति के परिवर्तन के कारण आवश्यक था ।इधर स्थितियों की वास्तविकता में एक मूलभूत परिवर्तन आया है। श्रीमां ने स्वयं एक अन्य संदेश में 24 अप्रैल 1956 ईस्वी को स्पष्ट किया -पृथ्वी पर आतिमानस का प्राकट्य केवल एक आश्वासन नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत सच्चाई है, वास्तविकता है । अतिमानस यहां कार्यरत है और एक दिन आएगा जब, अत्यंत अल्पज्ञ, अत्यंत अनजान, यहां तक कि अत्यंत अनिच्छुक भी इसे पहचानने का सौभाग्य प्राप्त कर सकेंगे । श्रीमां बार-बार अपने एक सूक्ष्म दर्शन का उल्लेख करती हैं और जोर देकर घोषणा करती हैं कि नया विश्व जन्म ले चुका है, जन्म ले चुका है ,जन्म ले चुका है ! यह परोक्ष में विद्यमान है , गतिशील है और एक अदम्य में और अक्षय तरीके से अतीत के उन सभी धुंधलकों को हटा रहा है, जिसने इसे ढक रखा है । अज्ञान का बाहरी बोझ इसे हमेशा नहीं रोक सकेगा , प्रगति जारी है... ।'

इन इन आश्वासनों के बाद भी यदि हम सजग ना हुए तो यह बड़े ही अफसोस की बात होगी। आइए हम सब कृत संकल्प हो श्री मां के दिखाए मार्ग पर चलने में अब क्षणिक देर भी ना करें और उनके उस महत् कार्य में अपने जीवन को समर्पित करने को तत्पर हो जाएं, जो उन्होंने इस पार्थिव जीवन को दिव्य रूप में रूपांतरित करने के लिए दिखाया है । हम पर श्रीमां की कृपा बनी रहे । हम सबके अंदर उनकी प्रेरणा ,उनके मार्ग पर अनवरत रूप से गतिशील रहने का संकल्प दृढ़ रूप से बना रहे , इसी शुभेच्छा और स्नेह के साथ ....,

- अपर्णा

विषय-सूची

✦	हे माँ!! तुम्हारे चित्र	7
✦	माताजी का वक्तव्य	8
✦	मधुर माँ	10
✦	श्री माँ के वचन	11
✦	अवसाद	12
✦	श्रीमाँ की कला- सर्जना	13
✦	माँ के स्वरूप	23
✦	माताजी की अंशविभूतियां	30
✦	श्रीमाँ के कथन	32
✦	थोड़ी देर बाद का रास्ता	34
✦	माँ और उनके कार्य का स्वरूप	37
✦	श्रीमाँ का पावन स्मरण	41
✦	माताजी – प्रसंगवश अपने बारे में	44
✦	गतिविधियाँ	49

हे माँ!! तुम्हारे चित्र

तुम चित्र हो, छवि चित्र हो संसृति रहस्य विचित्र हो
अवतरित क्षिति उद्धार हित, अनुपम सबल भू-मित्र हो
तुम भागवत श्री वृत्ति हो, सर्जक निसर्ग प्रवृत्ति हो
सचेतना का सार-सत् नर- प्रगति की आवृत्ति हो
तुम आंतरात्मिक मूल हो, तुम चैत्य सत् परिमूल हो
साधना-सरि के कूल हो, मिथ्यात्व का प्रतिकूल हो
तुम दिव्य चेतन शक्ति हो, जग सारा ब्रह्म-विभक्ति हो
श्री साधना का सेतु तुम, मृदु भागवत अनुरक्ति हो
साधक सतत यदि ध्या सके, शायद तुम्हें फिर पा सके
फिर आपका ले सदाश्रय, सत्-चित् परम तक जा सके
रूपान्तरण की नव विधा, जग ज्योति की नूतन प्रभा
नर-वंश पर करके कृपा, भगवान् की विदिशा दिखा
परिणाम से निष्काम हूँ, तब स्नेह हेतु सकाम हूँ
मैं पुत्र से बढ़ कर तुम्हारा एक नम्र गुलाम हूँ।
मुझ पर बरस जाओ सरस, निर्झरण आनन्दाभरण
हे स्वर्ग-श्री पर्यावरण, प्रभु-आवरण साधक-शरण
मेरी अहंकृत वृत्तियां, दुरितांत प्राण प्रवृत्तियाँ
आसुरिक निष्कृतियां अशुभ, दुष्कृत भरी आवृत्तियां
इनसे विमोचन मैं स्वयं निज कभी पा सकता नहीं
प्रतिलोम हृद्गति से तुम्हारी ओर आ सकता नहीं
इस हेतु हे मीराम्बिके मृदुलातिमृदु सृजनाम्बिके
मेरे दहर के केन्द्र में आवास लो मधुराम्बिके

- डॉ. ज्ञानचन्द्र

माताजी का वक्तव्य

दिव्य आगमन से

मैं जानती हूँ मैं क्या हूँ। दूसरे क्या कहते हैं, क्या सोचते हैं, इससे उस सच्चाई में कोई फर्क नहीं पड़ता जो मैं अपने बारे में जानती हूँ। संसार की स्वीकृति-अस्वीकृति न तो उस वास्तविकता को घटा सकती है, न बढ़ा सकती है। मैं जो कुछ हूँ, हूँ। "मैं क्या करती हूँ" यह वास्तव में एक अलग सवाल है और यह सवाल संसार की अपनी मनःस्थितियों एवं हालातों पर निर्भर करता है क्योंकि मुझे उन्हीं के माध्यम से और उन्हीं के द्वारा कार्य करना है। मैं जानती हूँ उस सत्यता की परिपूर्णता को जिसे अभिव्यक्त करने के लिए मैं कार्य कर रही हूँ, लेकिन वह सत्य विश्व जीवन में कितना अभिव्यक्त हो सकेगा, यह स्वयं विश्व जीवन के प्रयास और प्रस्तुति पर निर्भर करता है। जो चेतना मैं इस पतनोन्मुख प्रवृत्ति वाले जीवन में उतारने का प्रयत्न कर रही हूँ, विश्व को उसे ग्रहण करने और स्वीकार करने की क्षमता अपनानी चाहिये अन्यथा चाहे मैं कितनी ही सर्वोच्च और अवश्यंभावी सत्य यहाँ विकीर्ण करने का यत्न करू वह पूर्णतया अव्यक्त और अनभिज्ञ रह जायगा यदि जीवन की वर्तमान मनोवृत्ति उसे पहचानने और स्वीकार करने से इन्कार करती है। और निश्चय ही यह सृष्टि रंचमात्र भी उससे लाभान्वित नहीं हो सकेगी।

आप पूछ सकते हैं कि यदि यह चेतना इतनी सर्वोच्च है और यह सत्य सर्वव्यापी है तो क्यों वह स्वयं इस संसार को अपनी स्वीकृति के लिए बाध्य नहीं कर सकता? क्या वह संसार के अवरोधक भाव को तोड़ नहीं सकता अथवा उसकी अस्वीकृतियों को ग्रहणशीलता में बदलने के लिए बाध्य नहीं कर सकता? हाँ, सच है, ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि सृष्टि का सृजन इस तरीके से नहीं हुआ है और न विवशता से यह आगे बढ़ी है और न इस पद्धति से इसने विकास किया है। इस सृष्टि और सृजन का मूल उद्गम स्वतन्त्रता है। यह उसकी चेतना का स्वतंत्र चुनाव है और यह स्वतंत्रता ही उसके चरित्र का मूल स्वभाव है। यदि संसार इस सर्वोच्च शक्ति से इन्कार करता है, इस श्रेष्ठ उपलब्धि से मुँह मोड़ता है तो वह अपने स्वतंत्र चुनाव के सुखद भाव में ही ऐसा करता है। और यदि वह उस सत्य को पहचानता और उसकी उपलब्धि की ओर मुड़ता है तो यह भी उसके स्वतंत्र चुनाव के आनन्द का परिणाम है। यदि इस विकारयुक्त संसार को तुरन्त उस सच्चाई की ओर मुड़ने का आदेश दे दिया जाता और सब कुछ क्षणों में चमत्कार की तरह घटित कर दिया जाता तब इस सृष्टि रचना का कोई प्रयोजन नहीं था। सृष्टि रचना विकास का एक खेल है.. एक यात्रा है.. एक गति है जो समय और अवकाश के द्वारा कदम-कदम अपने स्तरों पर स्तर आगे बढ़ती हैं। यह ऐसी निरन्तर प्रक्रिया है जो अपने स्रोत से दूर जाती है और पुनः उसी की ओर लौटती है। यही इस विश्व रचना का सिद्धान्त व प्रयोजन है। सृष्टि की इस रचना में कोई विवशता और बाध्यता नहीं है। इसकी स्वाभाविक गति

में किसी आदेश की मजबूरी नहीं है, क्योंकि ऐसी लादी हुई बाध्यता सृजन की गति और लय को भंग कर देगी। तो भी एक विवशता है-एक बाध्यता है और वह है अपनी निजी प्रकृति और स्वभाव का अनवरत दबाव.. आन्तरिक अपूर्णता का सतत अहसास और यही वह चीज है जो इस विश्व जीवन की चेतना को इन तमाम हेराफेरी व परिवर्तनों से होकर अपने मूल उद्गम की ओर ले जाती है। अब यह कहा जाता है कि भगवान की कृपा सब कुछ कर सकती है और उसे करना चाहिए, तो इस बात का इससे अधिक व कम कोई अर्थ नहीं कि यह कृपा इस वापसी और पहचान को तीव्र अभीप्सा और गति देती है। भगवत् कृपा उन आधारों को चुनती है जो संकल्पशील हैं... सजग हैं और उसका सहयोग करते हैं। वे लोग स्वयं इस कृपा के अंश और भाग बन जाते हैं। जिस सत्य की स्थापना के लिए मैं कार्य कर रही हूँ वह पृथ्वी पर अपने को धारण व अभिव्यक्त करेगा क्योंकि अन्ततः पृथ्वी और सृष्टि की यही अनिवार्य नियति है । आप जानते है कि वह नियति क्या है? वह है- दिव्य-जीवन !

एक दिन में लौटूंगी बन कर प्रकाश की वाहक
तब घृणा नहीं रह पाएगी मानव- हृदय में,
और भय एवं दुर्बलता मनुष्य जीवन से हो जाएगी विलुप्त,
और तब सब कुछ हो जाएगा सशक्त उल्लसित एवं सुखद।

एक दिन मैं लौटूंगी बन कर शक्ति की वाहक,
तब दुख-संताप पृथ्वी पर से हो जाएंगे विनष्ट,
यह विश्व पा जाएगा छुटकारा खूंखार पशु के क्रोध से,
और सर्वत्र शांति और आह्लाद का होगा प्रसार।

एक दिन मैं लौटूंगी उस प्रभु के हाथों को अपने हाथों में थामे
और तब तुम उस 'परम ब्रह्म' का देख पाओगे मुखड़ा
और सकल विश्व में प्रकाश और शांति का होगा साम्राज्य।

-सावित्री

मधुर माँ ,

आपने लिखा है, "सब त्यागों में अपनी अच्छी आदतों को त्यागना सबसे कठिन है।" इससे आपका ठीक-ठीक क्या मतलब है ? क्या इसका भाव यह है कि अच्छी आदतें योग के लिए जरूरी नहीं हैं ?
जब तक तुम आदतों के आधार पर काम करते हो तब तक अच्छी आदतें जरूरी हैं, लेकिन योग के परम लक्ष्य को पाने के लिए तुम्हें सभी बंधनों को छोड़ना होगा, वे चाहें जो भी क्यों न हों। और अच्छी आदतें भी बंधन हैं जिन्हें एक दिन छोड़ना होगा, यदि तुम एकमेव चरम प्रेरणा, परम प्रभु की इच्छा की आज्ञा का पालन करना चाहो और इस योग्य हो कि उसके सिवा किसी और की आज्ञा का पालन न करो।

संदर्भ : श्रीमातृवाणी (खण्ड-१६)

* ***

क्या ऐसे चिह्न हैं जो यह बतलाते हैं कि मनुष्य इस पथ के लिए तैयार हो गया है, विशेषकर जब उसे आध्यात्मिक गुरु प्राप्त न हो?
हां, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लक्षण है सभी परिस्थितियों में आत्मा की पूर्ण समता का होना। यह पूर्णतः अनिवार्य आधार है; यह बहुत स्थिर, अचञ्चल, शान्तिपूर्ण वस्तु है, महान् शक्ति का बोध है। वह स्थिरता नहीं, जो तामसिकता से आती है, बल्कि एक एकाग्रीभूत शक्ति-सामर्थ्य का बोध है जो तुम्हें सर्वदा अटल बनाये रखता है, चाहे कुछ भी घटित क्यों न हो, यहाँ तक कि ऐसी परिस्थितियों के अन्दर भी, जो तुम्हें अपने जीवन में अत्यन्त भयानक प्रतीत होती हैं। बस, यही है पहला चिह्न।
दूसरा चिह्न है: तुम अपनी साधारण स्वाभाविक चेतना में पूर्णतः कारारुद्ध अनुभव करते हो, जैसे कि किसी अत्यन्त कठोर वस्तु में, दम घोंटने वाली और असह्य वस्तुओं में तुम अवरुद्ध होओ, ऐसा लगता है मानों तुम्हें किसी लोह दीवाल में छिद्र बनाना पड़ रहा हो। और यन्त्रणा लगभग असह्य हो उठती है, गला घोंटने जैसा महसूस होता है; तोड़ कर निकल जाने का एक आन्तरिक प्रयास होता है और तुम तोड़ कर निकल नहीं पाते। यह भी पहले चिह्नों में से एक है। इसका तात्पर्य है कि तुम्हारी आन्तरिक चेतना एक ऐसे बिन्दु पर पहुंच गयी है जहाँ उसका बाहरी ढांचा उसके लिए अत्यधिक तंग हो गया है - साधारण जीवन, साधारण क्रिया-कलापों, साधारण सम्बन्धों का वह ढांचा, इतना छोटा, इतना तुच्छ हो गया है कि तुम अपने अन्दर उसे तोड़ देने की एक शक्ति अनुभव करते हो।

एक और तीसरा चिह्न भी है : जब तुम एकाग्र होते हो और एक अभीप्सा तुम्हारे अन्दर होती है तो तुम... एक प्रकार की ज्योति, शान्ति, शक्ति को नीचे आते हुए अनुभव करते हो; और लगभग तुरन्त एक आन्तरिक अभीप्सा, एक पुकार उठती है, और प्रत्युत्तर आ जाता है। इसका भी यही मतलब है कि सम्बन्ध अच्छी तरह स्थापित हो गया है।

संदर्भ : प्रश्न और उत्तर १९५०-१९५१

श्री माँ के वचन

चीजों का तरीका

... अगर हर एक, जो कुछ जरूरी है वह करे और भरसक अधिक-से-अधिक करे तो एक ऐसी स्थिति तक पहुंच जाना सम्भव है जहाँ से हमेशा ऊपर की ओर ही गति होगी, जहाँ नये सिरे से शुरू करने के लिए कुछ नष्ट करने की जरूरत न होगी। यह अनिवार्य नहीं है परन्तु अभी तक हमेशा ऐसा ही हुआ है, ...

स्थिति ऐसी है कि प्रकृति ने जो कुछ किया है उसका सहारा लेने के लिए हम बाधित हैं, क्योंकि अभी तक वही काम करती आयी है। लेकिन साथ ही हम उसकी कार्य-प्रणालियों को पसन्द भी नहीं करते। इससे एक छोटी-सी आन्तरिक अनबन-सी पैदा हो जाती है (शायद इसे पारिवारिक अनबन कह सकते हैं!); लेकिन इससे चीजें कुछ कठिन बन जाती हैं, क्योंकि वह नहीं चाहती कि उसके होने के तरीके में बाधा डाली जाये। फिर भी, यदि व्यक्ति उसी तरह करता जाये जैसा वह चाहती है तो हमेशा वही कहानी चलती रहेगी। हमेशा इस तरह विलुप्त होने और नये सिरे से शुरू करने की जरूरत रहेगी, क्योंकि यह उसका खेल है। इसलिए हमें उसे नष्ट करने से रोकने में सक्षम होना चाहिये। लेकिन अगर अकस्मात् एक अच्छा उपाय निकल आये जिससे प्रकृति में दिलचस्पी पैदा की जा सके और उसका सहयोग लिया जा सके तो उसके सहयोग के साथ सफल होना संभव होगा।

वास्तव में, जरूरी यह है कि उसे यह समझाया जाये कि चीजें उसके तरीके से भिन्न, अलग तरीके से भी की जा सकती हैं।

संदर्भ : प्रश्न और उत्तर १९५०-१९५१

* ***

आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के लिए सही मनोवृत्ति

मधुर मां,

अपने जीवन में मुझे जब कभी कठिनाई का सामना करना पड़ा है, हर बार जब कभी मुझे किसी सुख-आभासी सुख-से वञ्चित होना पड़ा है तो मेरे मनोवैज्ञानिक कष्ट को दूर करने के लिए हमेशा तुरन्त ही कोई सान्त्वना आयी है। कोई चीज मुझसे कहती है, "यह सब स्वयं तुम्हारे भले के लिए और भागवत कृपा द्वारा किया गया है।" क्या यह अच्छा है, क्या इस तरह सोचना अच्छा और लाभप्रद है?

न सिर्फ यह कि यह सोचना ठीक, अच्छा और लाभप्रद है, बल्कि अगर तुम आध्यात्मिक मार्ग पर चलना चाहो तो यह मनोवृत्ति बिलकुल अनिवार्य है। वस्तुतः, यह पहला कदम है, जिसके बिना तुम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। इसीलिए मैं हमेशा कहती हूं, "तुम जो कुछ करो, अपना अच्छे-से-अच्छा करो, और परिणाम परम प्रभु के हाथ में छोड़ दो; तब तुम्हारा हृदय शान्त रहेगा।"

संदर्भ : श्रीमातृवाणी (खण्ड-१६)

अवसाद

माताजी,

पता नहीं क्यों, दो-तीन दिन से मैं कुछ उदास हूँ। माताजी, कभी-कभी जब मैं अवसाद में होती हूँ, जब मुझे लगता है कि सम्भवतः मैं योग न कर सकूँगी तो मेरा मन कल्पना करता है: "अगर माताजी मुझसे कहें कि मैं योग नहीं कर सकती और मुझे यहाँ से चले जाने के लिए कहें तो मेरा कोई भी तो नहीं है जिसके यहाँ मैं जा सकूँ, ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ में रह सकूँ। मैं यहाँ नौकर की तरह भी रह लूँगी, लेकिन कहीं और रहना मेरे लिए असम्भव है।"

ऐसी बातें सोच कर मैं और भी उदास हो जाती हूँ।

मेरी माँ, मुझे लगता है कि आज मेरा मन इतना स्थिर नहीं है कि मैं आपको कुछ लिख सकूँ। आज मैंने ९ घण्टों तक साड़ी का काम किया।

मेरी प्यारी नन्हीं बच्ची,

तुम्हें अवसाद को स्वीकार नहीं करना चाहिये, कभी नहीं, और इस प्रकार के सुझावों को तो बिलकुल नहीं। कैसी मूढ़ताभरी मिथ्या बात है कि मैं तुमसे जाने के लिए कह सकती हूँ! तुम ऐसी बात का सपना भी कैसे ले सकती हो? तुम यहाँ अपने घर में हो, क्या तुम मेरी नन्हीं बेटी नहीं हो? तुम्हारा स्थान हमेशा मेरे पास रहेगा, मेरे प्रेम और मेरी सुरक्षा में।

संदर्भ : श्रीमातृवाणी (खण्ड १६)

माताजी की चेतना से संपर्क समस्त आवश्यक उपलब्धियों की ओर अग्रसर करेगा और सभी सच्ची अभीप्साओं को पूर्ण करेगा।

माताजी के प्रति सदैव एकनिष्ठ रहो, वे अहर्निश तुम्हारे साथ रहेंगी और तुम्हें सुरक्षा प्रदान करेंगी । साधना एवं कार्य के लिए अपने दैहिक स्थूल स्तर पर माता जी की ओर खुले रहना हर प्रकार की आवश्यक प्रगति को संपन्न करता है। यह सर्वोत्तम रहस्यों में से एक है अर्थात साधना का केंद्रीय रहस्य है।

-श्रीअरविन्द

श्रीमाँ की कला- सर्जना

- सुरेश चन्द्र त्यागी

श्रीमाँ की बहुआयामी व्यक्तित्व का एक आयाम कला-मर्मज्ञ और कला-सर्जक का भी है। भगवती शक्ति के रूप में श्रीमाँ को मानने और जानने वाले भक्तजन इस तथ्य से कम ही परिचित होंगे। श्रीमाँ ने अपनी वार्ताओं में यत्र-तत्र अपनी कला-विषयक धारणाओं को भी स्पष्ट किया है। यहाँ हमारा लक्ष्य उनकी कला-सर्जना की यात्रा का परिचय देना है। उनका कला-दर्शन अलग विचार का विषय है।

श्रीमाँ की कलाकृतियों और रेखांकनों की जो पुस्तक (The Mother : Paintings and Drawings) प्रकाश में आई है, उससे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने कला-सर्जन का प्रशिक्षण पेरिस में प्राप्त किया था। जो कलाकृतियाँ उपलब्ध हैं, उनमें कुछ का सृजन पेरिस में हुआ था, कुछ का जापान में और कुछ का पांडिचेरी में। एक वार्तालाप में श्रीमाँ ने स्वयं कहा था कि उन्होंने आठ वर्ष की आयु से ही चित्रांकन शुरू कर दिया था और दस वर्ष की उम्र से ऑयल पेंटिग तथा अन्य तकनीकों को सीखना प्रारम्भ कर दिया था। कला का बाकायदा प्रशिक्षण देने के लिए मीरा (श्रीमाँ का यही नाम था) के पिता ने अलग से शिक्षिका नियुक्त की थी जिसने उनको चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु तक कला तकनीकों का परिचय कराया था। खोज करने पर ज्ञात हुआ कि 1892 में पेरिस में हुई एक कला-प्रदर्शनी में मीरा की एक पेंटिंग प्रदर्शित की गई थी। उस समय मीरा चौदह वर्ष की थी। श्रीमाँ ने एक बार यह भी बतलाया था कि जब वह चौदह वर्ष की थी तो प्रति रविवार छोटे बच्चों को पेंटिंग सिखलाया करती थीं।

मीरा की शैशव की अनुभूतियाँ उनकी बाद की वार्ताओं में प्रकट हुई है। आध्यात्मिक अनुभूतियों का श्रीगणेश उस समय हो गया था, जब वह केवल पाँच वर्ष की थी। तर्कशक्ति के द्वारा उन अनुभूतियों का विश्लेषण करने या समझाने की वह उम्र नहीं थी। पेंटिंग की ओर रुझान प्राणिक सत्ता के आयामों की ओर केन्द्रित था, जहाँ भावनाएँ, आवेग और आकांक्षाएँ रहती हैं। श्रीमाँ ने एक बातचीत में (25 जुलाई 1962) कहा था-

"कला और सौन्दर्य के सभी पक्षों ने, लेकिन विशेष रूप से संगीत और पेंटिंग ने, मुझे मोहित किया था। उस काल के दौरान मैंने एक बहुत सघन प्राणिक विकास एक आंतरिक 'पथ-प्रदर्शक' की उपस्थिति के साथ, अपने प्रारंभिक वर्षों में हुए अनुभव की तरह, अनुभव किया था और सब कुछ अध्ययन पर केन्द्रित था - संवेदनों का, टीका-टिप्पणियों का अध्ययन, तकनीक का अध्ययन, तुलनात्मक अध्ययन, यहाँ तक की स्वाद, गंध और श्रवण से सम्बन्धित उक्तियों के समस्त वर्णक्रम का - अनुभूतियों का एक प्रकार का वर्गीकरण। और यह जीवन के सभी

पहलुओं तक फैला हुआ था, जीवन जितने अनुभव प्रस्तुत कर सकता है उन सब तक - सभी अनुभव- दुःख, हर्ष, कठिनायाँ, कष्ट-सब कुछ, आह! अध्ययन का पूरा क्षेत्र! और सदैव अन्तः स्थित यह 'उपस्थिति' सब चीजों का निर्णय, निश्चय, वर्गीकरण, संघटन एवं व्यवस्थापन करती हुई।"

बचपन में ही मीरा ने पेंटिंग की तकनीक ही नहीं सीख ली बल्कि एक कलाकार की दृष्टि भी विकसित की थी। उन्होंने एक बातचीत में (31 मार्च 1954) सामान्यजन और कलाकार की दृष्टि में अंतर इस तरह समझाया था-

" सामान्यजनों की दृष्टि और कलाकारों की दृष्टि में बहुत अंतर है। कलाकारों का चीजों को देखने का ढंग सामान्य जनों की अपेक्षा कहीं अधिक पूर्ण एवं सचेतन है। जब किसी व्यक्ति ने अपनी दृष्टि को प्रशिक्षित नहीं किया होता तो वह अस्पष्ट रूप से, अनिश्चित पूर्वक देखता है और सटीक दृष्टि की अपेक्षा प्रभावों को देखता है। कलाकार जब किसी चीज को देखता है और अपने नेत्रों का उपयोग करना सीख लेता है तो वह उदाहरणार्थ जब किसी चेहरे को देखता है तो मात्र रूपाकार देखने के बजाय-केवल रूपाकार-तुम समझ रहे हो रूपाकार का सामान्य प्रभाव.. वह देखता है चेहरे की यथातथ्य संरचना, विभिन्न अंगों के आयाम, चेहरा सुसंगत है या नहीं और क्यों... एक निगाह में सभी चीजें, तुम समझ रहो हो- एक दृष्टि में जैसे कोई विविध रूपाकारों के बीच सम्बन्धों को देखता है।"

पन्द्रह वर्ष की आयु में स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मीरा ने एक आर्ट स्टूडियो में प्रवेश ले लिया जहाँ वह प्रतिदिन लगभग आठ घंटे पेंटिंग में व्यस्त रहती थीं। यह कौन-सा स्टूडियो था, इसकी चर्चा श्रीमाँ ने अपनी वार्ताओं में कहीं नहीं की है लेकिन अनुसंधानकर्त्ताओं ने पता लगाया है कि पेरिस में तब एक ही जगह थी जहाँ महिलाएँ कला की शिक्षा ले सकती थीं और यह थी जूलियन एकेडेमी। 1868 में रोडोल्फ जूलियन (Rodolphe Julian) ने इसकी स्थापना की थी। पेरिस में इस एकडेमी के कई स्टूडियो थे जिनमें कई में महिलाओं को पेंटिंग सीखने की सुविधा प्राप्त थी जूलियन का यह मानना था कि कला और विज्ञान की विविध शाखाओं में महिलाएँ पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं। इसी कारण जूलियन को कला-शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी माना जाता है और लोग उनको नारीवादी आंदोलन का पिता कहते हैं।

जूलियन एकेडेमी (Academia Julian) में बहुत योग्य शिक्षकों की नियुक्ति की जाती थी । ये शिक्षक अपने विद्यार्थियों में प्रकृति-प्रेम की विशेष समझ पैदा करने का प्रयास करते थे। श्रीमाँ ने कला के विद्यार्थी के रूप में बीते अपने जीवन के वर्षों के बारे में यत्र-तत्र कहा है लेकिन बहुत कम। सम्पन्न बालिका से एक कुशल कलाकार के रूप में विकास का यह काल अवश्य ही बड़ा रोचक और विलक्षण रहा होगा। लेकिन कला को यश के लिय या पेशे के रूप में अपनाने के लिए मीरा के मन में कोई लालसा नहीं थी। उन्होंने किस भाव से कला को अपनाया था, यह बहुत वर्षों के बाद व्यक्त विचारों में प्रकट होता है। 28 जुलाई 1929 की एक वार्ता में उन्होंने कहा था-
"कला का अनुशासन अपने केन्द्र में वही सिद्धान्त लिये हुए है जो योग का अनुशासन। दोनों में ही लक्ष्य होता है

अधिकाधिक सचेत होना , दोनों में तुमको उस चीज को देखना और अनुभव करना सीखना होता है जो कि सामान्य दृष्टि और अनुभूति से परे होती है, भीतर जाना होता है और वहाँ से गहरी चीजों को बाहर ले आना होता है। चित्रकारों को अपनी आँखों की चेतना के विकास के लिए एक अनुशासन अनुसरण करना होता है जो अपने आप में प्रायः योग ही है। अगर वे सच्चे कलाकार हैं और परे देखने का प्रयास करते हैं तो इस एकाग्रता के द्वारा अपनी चेतना में विकसित होते हैं जो कि योग द्वारा प्रदत्त चेतना से भिन्न नहीं हैं।"

13 अक्टूबर 1897 को मीरा का विवाह हेनरी मॉरिस (Henri Morisset) से हुआ। हेनरी मॉरिस का जन्म पेरिस में 6 अप्रेल 1870 को हुआ था और वह मीरा से आठ वर्ष बड़े थे । एक चित्रकार के रूप में उनकी प्रतिष्ठा थी। उन्होंने प्रतीकवादी चित्रकार गुस्ताव मोर्यू(Gustave Moreau) के साथ चित्रकला का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। हेनरी मॉरिस ने जूलियन एकेडेमी में भी शिक्षा पाई थी। संभवतः मीरा और हेनरी की भेंट वहीं हुई होगी। हेनरी के पिता भी एक प्रसिद्ध चित्रकार थे।

विवाह के लगभग एक वर्ष बाद 23 अगस्त 1898 को मीरा ने एक बेटे को जन्म दिया जिसका नाम था एन्द्रे (Andre)। इसी वर्ष के शुरू में मीरा और हेनरी पाउ (Pau) गये थे जो दक्षिण पश्चिम फ्रांस का एक नगर है। 29 अप्रैल 1961 की एक वार्ता में श्रीमाँ ने पाउ की यात्रा का स्मरण किया है-

"मुझे पाउ के एक शुद्ध-हृदय पुजारी का स्मरण आता है जिसका एक चर्च था- एक छोटा सा पूजा स्थल-और वह इसको सुसज्जित करना चाहता था। वह एक कलाकार था। उसने एक स्थानीय अराजकतावादी से यह कार्य करने को कहा क्योंकि वह बड़ा कलाकार था। वह एन्द्रे के पिता और मुझे जानता था। उसने पुजारी से कहा- 'मैं पेंटिंग के लिए इनकी सिफारिश करता हूँ।' वह भित्ति-सज्जा कर रहा था। वहां कई खंड थे, मुझे स्मरण आता है कि आठ खंड थे। उसने कहा-'मैं इनकी सिफारिश करता हूँ क्योंकि ये सच्चे कलाकार हैं।' इसलिए मैंने एक खंड में कार्य किया। यह कम्पोस्टेला (Compostela) के सेंट जेम्स का चर्च था जिनके बारे में स्पेन में एक कथा प्रचलित है कि वह ईसाईयों और मूरों (Moors) के बीच युद्ध में प्रकट हुए थे जिससे मूर पराजित हो गये थे। अद्भुत थे वह! वह सफेद घोड़े पर सवार स्वर्णिम प्रकाश में प्रकट हुए थे लगभग यहाँ के कल्कि की तरह। निचले भाग का चित्रांकन किया था। .. तब स्वाभाविक ही था कि पुजारी ने हमारा स्वागत किया और हमें रात्रि- भोज पर बुलाया, उस अराजकतावादी को और हमें । वह बड़ा दयालु था! सचमुच एक शुद्ध-हृदय व्यक्ति ! मैं पहले से ही शाकाहारी थी और शराब नहीं पीती थी। उसने धीरे से मुझे डांट और –कहा 'लेकिन हमारा प्रभु है जो यह सब हमें प्रदान करता है इसलिए तुम इसे क्यों नहीं ग्रहण करतीं?' वह बड़ा सौम्य था।... और जब उसने पेंटिंग को देखा तो मॉरिस के कंधे को थपथपाया (मॉरिस नास्तिक था) और कहा-'बताओ, तुमको क्या पसन्द है लेकिन तुम हमारे प्रभु को जानते हो अन्यथा तुम कभी भी इस तरह पेंटिंग न कर पाते।"

पाउ में सेंट जेम्स का चर्च अब भी है और वहाँ भित्ति चित्र भी सुरक्षित हैं। श्रीमाँ ने जिस कलाकार को

'स्थानीय अराजकतावादी' कहा है, वह कौन था? संभव है कि वह जोसेफ कास्टेन (Joseph Castaigne) हो। चर्च में कुछ कृतियाँ उसकी मानी जाती हैं।

विवाह के बाद हेनरी और मीरा ने पेरिस में एक मकान ले लिया था जिसके साथ लगा हुआ एक पेंटिंग स्टूडियो भी था। एन्द्रे बचपन में इनके साथ नहीं रहता था बल्कि अन्य सम्बन्धियों या पितामह के साथ रहता था। एन्द्रे ने इन दिनों को स्मरण करते हुए एक बार कहा था-

" मेरी सबसे पुरानी यादें इस सदी के शुरू की हैं और बहुत स्पष्ट नहीं हैं । वे दो स्थानों पर केन्द्रित हैं । एक ब्यूजेन्सी (Beaugency)-लॉयर (Loire) नदी पर एक छोटा शहर, जहाँ मैं दो भुआओं, पितामह और नर्स के साथ रहता था। दूसरा स्थान पेरिस था 15 र् यू लेमर-सियर (Rue Lemercier) है जहाँ मेरे माता- पिता ने एक फ्लैट ले रखा था और जहाँ उनका पेन्टर स्टूडियो था जिसे मैं दुनिया का सबसे अद्भुत स्थान समझता था।

ब्यूजेन्सी मेर मन में अब भी उस बगीचे के कारण सजीव रूप में विद्यमान है जो कि घर के पिछवाड़े था और एक छोटे से आँगन से इससे जुदा था।..लेकिन जो बात मुझे सर्वाधिक आकर्षित करती थी, वह मेरे माता-पिता द्वारा अपनी मोटर कार में हमारे यहाँ आना। यह रिचर्ड ब्रेजियर (Richard Brazier) कार थी और इस पर नम्बर प्लेट नहीं थी। क्योंकि यह तीस किलोमीटर प्रति घंटे से अधिक नहीं दौड़ सकती थी। मुझे याद नहीं कि इस बात को एक बड़े फायदे के रूप में देखता था या एक हीनता के रूप में। मेरे माता-पिता अपने साथ कार में साइकिल का जोड़ा भी रखते थे क्योंकि यदि कार रुक जाए तो! वास्तव में ब्यूजेन्सी के पहले एक सौ पचास किलोमीटर के रास्ते में कार में गड़बड़ हो ही जाती थी। वे रात को कहीं ठहर जाते थे, साइकिलों पर वहाँ टहलते थे और कार की मरम्मत होने के बाद यात्रा पर आगे बढ़ते थे।"

एन्द्रे ने स्मरण किया है कि उनके माता -पिता ने जो मकान पेरिस में किराये पर लिया था,उसके पीछे काफी बड़ा बगीचा था और उसमें बड़ा स्टूडियो था। श्रीमाँ ने अपने इस स्टूडियों में कुछ पेंटिंग बनाई थीं और कुछ बनाई थी प्रकृति के सान्निध्य में। हेनरी मॉरिस के साथ मीरा का गृहस्थ जीवन (1897 और 1808 तक) ऐसा था जिसमें कला का स्थान सर्वोपरि था। श्रीमाँ ने एक बातचीत में इन वर्षों को प्राणिक सत्ता एवं सौन्दर्य-चेतना के संवर्धन काल के रूप में स्मरण किया है-कम से कम बाह्य और सक्रिय प्रकृति की दृष्टि से। श्रीमाँ की अधिकतर पेंटिंग इसी काल की हैं। लेकिन कला-जगत् में प्रसिद्ध होना उनका लक्ष्य तो था नहीं। हेनरी मॉरिस की कलाकृतियाँ कला-प्रदर्शनियों में प्रदर्शित होती थीं। उन्होंने ही आग्रह किया होगा कि मीरा की कुछ कृतियाँ वहां रहें। कीर्ति और ख्याति के लिए प्राण की लालसा के बारे श्रीमाँ ने एक बार कहा था-"दुर्भाग्यवश, प्राण एकदम गले-सड़े भोजन के लिए भी लालयित रहता और इतना लोभी होता है कि वह एकदम अक्षमता की मूर्ति से भी प्रशंसा स्वीकार लेता है। यहाँ मुझे पेरिस की कला-प्रदर्शनी के वार्षिक उद्घाटन का ख्याल आ रहा है जहाँ गणतंत्र के राष्ट्रपति, चित्रों को देखते हैं और बड़े

अर्थपूर्ण ढंग से यह खोज करते हैं कि एक भूदृश्य है और दूसरा रूप-चित्र और चित्रकला के बहुत ही अंतरंग आत्मशोध वाले ज्ञान की अदा के साथ टिप्पणियाँ करते हैं। चित्रकार भली-भांति जानते हैं कि ये टीका-टिप्पणियाँ कितनी असंगत हैं फिर भी अपनी प्रतिभा के प्रमाण-स्वरूप राष्ट्रपति के कथन को उद्धृत करने का कोई मौका नहीं चूकते।" मानव जाति का प्राण कीर्त्ति और ख्याति के लिए बहुत भूखा होता है।" (श्रीमातृवाणी, खंड 3, पृष्ठ 135)

कलाकारों के बीच बिताये ये वर्ष श्रीमाँ ने अनेक स्मरण किये हैं। एक बार किसी ने उनसे प्रश्न किया था- 'कलाकार प्रायः अनियमित आचरण वाले और चरित्र-भ्रष्ट क्यों होते हैं?

श्रीमाँ ने उत्तर में कहा था-" जब वे ऐसे होते हैं,इसका कारण यह होता है कि वे साधारणतया प्राणमय भूमिका में रहते हैं और उनका प्राण भाग उस जगत् की शक्तियों के प्रति अत्यंत संवेदनक्षम होता है और उस जगत् के नाना प्रकार के प्रभावों और आवेगों को ग्रहण करता रहता है जिन्हें वश में रखने की शक्ति उनमें नहीं होती । और बहुधा उनके विचार बहुत स्वतंत्र होते हैं और साधरण मनुष्य का जीवन जिन तुच्छ सामाजिक रूढ़ियों और नैतिक प्रथाओं द्वारा नियंत्रित होता है, उनमें वे विश्वास नहीं करते। चाल-चलन सम्बन्धी प्रचलित नियमों से तो वे अपने को बंधा हुआ महसूस नहीं करते और उन्हें वह आंतरिक नियम प्राप्त नहीं होता जो इनका स्थान ले सके। चूँकि उनके अंदर वासना-पुरुष की गतियों को रोकने के लिए कोई चीज नहीं होती इसलिए उनका जीवन आसान स्वच्छन्द या असंयमित हो जाता है। परन्तु सभी की यह हालत नहीं होती। मैं दस वर्ष तक कलाकारों के बीच रही हूँ और अनेकों को सोलह आने सद्गृहस्थ पाया; वे विवाहित थे और व्यवस्थित जीवन बिताते थे, अच्छे पिता थे, अच्छे पति थे तथा क्या करना चाहिए और क्या नहीं, इस विषय के जो नैतिक सिद्धांत है, उनका अपने जीवन में अत्यन्त कठोरतापूर्वक पालन करते थे।"

मीरा का सम्पर्क किन कलाकारों से था, इसका खुलासा उन्होंने कहीं नहीं किया है। एक नाम का उल्लेख अवश्य किया है और वह है रोदिन। (Rodin) रोदिन मीरा से लगभग चालीस वर्ष बड़ा था। 17 मार्च 1954 की बातचीत में श्रीमाँ ने एक घटना का विवरण दिया है जो बहुत रोचक है । वह इस प्रकार है-

" रोदिन ने एक दिन मुझसे एक प्रश्न किया, उसने पूछा: "दो स्त्रियों को परस्पर ईर्ष्या करने से कैसे रोक सकते है?" मैंने उससे कहा: " ओह, यह सचमुच एक भारी समस्या है! किन्तु तुम यह क्यों पूछते हो?" तब उसने बतलाया : "बात यह कि मैं जो मूर्तियाँ बनाता हूँ, प्राय: उन्हें पत्थर में गढ़ने या कांसे में ढालने से पहले मिट्टी से गढ़ता हूँ। और अधिकतर ऐसा होता है – कई बार मैं एक दिन के लिए बाहर चला जाता हूँ। अपने मिट्टी के प्रतिरूपों को गीले कपड़े से ढंक जाता हूँ ताकि मेरे पीछे वे सुख न जायें और उनमें दरारें न पड़ जायें अन्यथा मेरी सारी मेहनत मिट्टी में मिल जायेंगी हैं। और उस बेचारे मूर्तिकार के साथ यह हुआ। घर में उसकी पत्नी थी और एक स्त्री मॉडल थी जिसे सामने बैठाकर वह मूर्तियाँ बनाता था। उसका उस घर में काफी आना-जाना था और वह बिना रोक-टोक के घर में आती रहती थी। अब पत्नी तो पत्नी ठहरी। और जब रोदिन घर से बाहर जाता , वह सवेरे उसकी मूर्तियों के कमरे में आकर

सब पर पानी छिलक देती, सब कपड़ों पर जिनके नीचे मूर्तियों के सिर या और अंग पड़े हुए होते थे। सब कुछ वहाँ ढका रहता था, गीले कपड़े में लिपटा रहता था। उस पर पानी ऐसे छिड़का जाता था जैसे कि पौधों पर। अतः यह आती और पानी छिड़क जाती थी। उधर कुछ समय के बाद, दो घंटे पीछे वह स्त्री मॉडल भी आती उसके पास उस कमरे की चाबी रहती थी। कमरे को खोलकर वह भी पानी छिड़क जाती। वह भली-भाँति देखती थी कि सब गीला है किन्तु उसे भी अपने मूर्तिकार की मूर्तियों की देखभाल करने का अधिकार था, सो वह भी उस पर पानी छिड़क जाती।" और तब रोदिन ने मुझे बतलाया- "परिणाम यह होता कि जब मैं बाहर से लौटता तो मेरी सारी मूर्तियाँ बह रही होतीं और जो भी काम करके जाता उसका निशान भी बाकी न होता।"

वह वृद्ध हो गया था, तब भी बूढ़ा नहीं था। बड़ा अद्भुत था वह। उसका सिर वन – देवता, यूनानी वन-देवता जैसा था। वह नाटा, एकदम भारी था, बड़ी पैनी आँखे थीं उसकी। वह बड़ा व्यंग्यप्रिय था और कुछ... वह इस बात पर हँसा करता था किन्तु तो भी वह वापस आकर मूर्तियों को साबूत ही देखना ज्यादा पसन्द करता।

...शायद मैंने भी, हँसी में कुछ उत्तर दे दिया था। हाँ, एक बात मुझे याद आती है। मैने उससे पूछा-"तुम उन्हें यह बात कह क्यों नहीं जाते थे कि आमुक स्त्री ही उस पर पानी छिड़ेगी?" उसने तब अपने सिर के बच-खुचे बालों को पकड़कर खींचा और बोली-"तब तो छुरे चल जायेंगे।"

एक अन्य कलाकार, जिससे मीरा का अच्छा परिचय था, मेतिस (Matisse) था। वह भी हेनरी माँरिस की तरह गुस्ताव मोर्यू (Gustave Moreau) का शिष्य था। 9 अप्रैल, 1951 की बातचीत में श्रीमाँ ने मेतिस का नाम तो नहीं लिया है लेकिन संकेत उसी की ओर है । वह कहती हैं-

"मैं एक चित्रकार को जानती थी। वह गुस्ताव मोर्यू का शिष्य था। वह वास्तव में बड़ा ऊँचा कलाकार था, वह अपने कार्य में बहुत दक्ष था और फिर भी.. वह भूखों मर रहा था, वह नहीं जानता था कि वह अपना खर्चा कैसे चलाये और वह बराबर रोया करता था। एक दिन उसे सहायता करने की अभिलाषा से एक मित्र ने एक चित्र-विक्रेता को उससे मिलने के लिए भेजा। जब वह व्यापारी उसकी चित्रशाला में प्रवेश किया तो इस गरीब कलाकार ने मन ही मन कहा- आखिरकार, यहाँ मेरे लिए एक अवसर है और उसने बनाये हुए सभी उत्तम चित्र दिखाये। चित्र-विक्रेता ने एकदम गंभीर मुद्रा बना ली, चारों और दृष्टि दौड़ायी, चीजों को उल्टा – पुल्टा और सभी कोनों से देखना- खोजना शुरु कर दिया। अचानक उसे मिल गया....... आह! मुझे तुम्हें यह बात समझा देनी चाहिए, तुम इन चीजों से परिचित नहीं हो। एक चित्रकार जब दिन भर काम करता है तो उसके बाद कभी-कभी उसकी रंग- पट्टिका पर कुछ मिले-जुले रंग शेष रह जाते हैं, वह उन्हें देख नहीं सकता, वे एक दिन में सूख जाते हैं इसलिए सर्वदा उसके पास कैन्वस के कुछ टुकड़े रहते है जो भली-भाँति व्यवस्थित नहीं होते और जिन पर वह उन चीजों को पोत देता है 'रंग पट्टिका की खुरचनें' कहते हैं (एक लचीली छुरी से वह रंग की तख्ती पर से सभी रंगों को खुरचता है और कैन्वसों पर पोत देता

है) और क्योंकि उसमें बहुत से रंग मिले होते है , उससे अप्रत्याशित आकार बन जाते हैं। वहाँ एक कोने में वैसा ही एक कैन्वस पड़ा था जिस पर वह कलाकार अपनी तख्ती कि खुरचन पोत दिया करता था। व्यापारी अचानक उस पर टूट पड़ता हैं- 'यह रहा! मेरे मित्र, तुम बड़े प्रतिभाशाली हो, यह एक चमत्कार है, बस यह है जिस तुम्हें दिखाना चाहिए! देखो यह रंगों की समृद्धि , आकारों की यह विविधता और कैसी है यह कल्पना!' और यह आदमी जो भूखों मर रहा था लजाते हुए बोला-'परन्तु महाशय, ये सब मेरी तख्ती की खुरचने हैं।'

और चित्र- विक्रेता ने उसे जोर से पकड़कर कहा- 'मूर्ख गावदी कहीं के ! यह कहने की बात नहीं है।' फिर उसने कहा-'यह मुझे दे दो, मैं इसे बेचने का भार लेता हूँ। इस तरह की चाहे जितनी चीजें मुझे दो - दस, बीस, तीस प्रतिमास-मैं तुम्हारे लिए उन सबको बेच दूँगा और मैं तुम्हें प्रसिद्ध बना दूंगा। और तब, जैसा कि मैं तुमसे कह चुकी हूँ, उसका पेट मांग रहा था, वह इस प्रस्ताव से बिल्कुल प्रसन्न नहीं था पर वह बोला-"ठीक है, इसे ले लीजिए, मैं देखूंगा।" उसके बाद आता है उसका मकान मालिक और अपना भाड़ा मांगता है, रंग का व्यापारी आता है और अपने पुराने बिलों का भुगताना चाहता है परन्तु पर्स बिल्कुल खाली है और तब क्या किया जाये? सो, उसने यद्यपि तख्ती की खुरचनों से तस्वीरें नहीं बनायीं पर उसने कुछ ऐसी चीजें तैयारी की जिन्होंने कल्पना को खुलकर खेलने का अवसर दिया, जिनमें आकार बहुत अधिक स्पष्ट नहीं थे, रंग सभी मिले-जूले और चमकदार थे, और मनुष्य जो कुछ देखता था उसे बहुत अधिक नहीं समझता था; और क्योंकि लोग ने जो कुछ देखा उसे बहुत अधिक नहीं समझा; जिन लोगो ने उसके विषय में कुछ नहीं समझा, उन्होंने चिल्लाना शुरू किया-' कितना सुन्दर यह है यह!' और उसने ऐसी ही चीजें अपने कला- विक्रेता को प्रदान की। उसने कभी अपनी चित्रकारी के लिए नाम नहीं कमाया जो वास्तव में बहुत सुन्दर होती थी (उसकी चित्रकारी सचमुच बहुत सुन्दर थी, वह बहुत अच्छा चित्रकार था) पर वह इन वीभत्स चित्रों के कारण विश्व में विख्यात हो गया! और यह बात है ठीक आधुनिक चित्रकला के प्रारंभिक युग की, यह उस समय की बात है जब सन् 1900 में चित्रकला की विश्व-प्रदर्शनी हुई थी। यदि मैं तुम लोगों को उसका नाम बता दूँ तो तुम सब उसे जान जाओगे।... परन्तु उस व्यक्ति को सामंजस्य और सौन्दर्य का बोध था और उसके रंग बहुत सुन्दर थे। परन्तु आजकल, जैसे ही चित्र में थोड़ा सा सौन्दर्य आ जाता है, वह बिल्कुल नहीं चलता, उसे तो बेहद भद्दा होना चाहिए। यह लो, यही है आधुनिक कला।"

मार्च 1908 में हेनरी मॉरिस से मीरा का सम्बन्ध विच्छेद हो गया। श्री माँ ने इस वर्ष को अपने जीवन के एक अध्याय का अंत माना है-कलात्मक और प्राणिक विकास का अध्याय। इसके बाद कला उनके मनोयोग का विषय नहीं रह गया। गुह्य शक्तियों के विकास का युग शुरू हुआ। हाँ, 1916-1920 के दौरान जापान में एक बार फिर सौन्दर्य बोध जागा। 1908-1915 के बीच उनकी किसी पेंटिंग का उपलब्ध न होना आश्यर्चजनक लग सकता है। यह वस्तुतः उनके जीवन में मानसिक विकास का काल था। 1911 में मीरा ने पॉल रिचार्ड (Paul Richard) से विवाह किया जो बौद्धिक दृष्टि से बहुत उन्नत स्थिति में थे।

1901-1903 को बीच मीरा अपने भाई मेतियो (Matteo) के मित्र, लुई थेमनलिस (Louis Themanlys) के माध्यम से पांलिश गुह्यवेता मैक्स थियों (Max Theon) के विचारों के सम्पर्क में आई। उन्होंने थियों के संगठन की पेरिस शाखा में सक्रिय भाग लेना शुरू किया। थिओं के मासिक रिव्यू कॉस्मिक (Revue Cosmique) के सम्पादन प्रकाशन में उनकी यह सक्रियता दिखलाई दी।

थियों तमसेन, अलजीरिया (Themcen, Algeria) में रहते थे। थियों की पत्नी अंग्रेज़ थी। वह परोक्षदर्शी गुह्यवेत्ता थी और रिव्यू में उसकी अनुभूतियाँ प्रकाशित होती थीं। मीरा ने इन दोनों से पत्राचार किया और 1905 में वह पेरिस में थियों से मिली। 1906 और 1907 की गर्मियों में वह तेमसेन गई और थियों दम्पती के साथ कुछ माह अध्ययन किया। वहाँ मीरा ने थियों के विस्तृत आवास का चित्रांकन किया और थियों का रेखाचित्र भी बनाया।

सितम्बर 1908 में श्रीमति थियों का निधन हो गया और तीन माह बाद रिव्यू भी बंद हो गया। थियों दम्पत्ती के साथ श्रीमाँ के परिचय और अनुभवों की कथा अलग है।

पाल रिचार्ड श्री अरविन्द से मीरा की भेंट कराने का माध्यम बने । यह 1914 की बात है 1915 में पाल रिचार्ड को वापस फ्रांस लौटना पड़ा। मीरा भी लौट गई। एक वर्ष बाद उनको फिर जापान के रास्ते भारत आना था। 18 मई, 1916 को ये दोनों मोकोहामा, जापान पहुँचे। जापान की इस यात्रा से पूर्व श्रीमाँ जापान के बारे में कम ही जानती थी लेकिन जापान के भूदृश्य उनकी आंतरिक दृष्टि में आते अवश्य थे जिन्हें वह दूसरे जगतों का समझती थी। जापान पहुँचकर ही ज्ञात हुआ कि ये दृश्य जापान के थे। श्रीमां ने अपनी वार्ताओं में जापान की बहुत प्रशंसा की है एक जगह उन्होंने कहा है- "यह देश (जापान) इतना अद्भुत , विलक्षण, बहुआयामी, अकल्पित, मनोहर, बीहड़ या मधुर है; यह अपने रूप-रंग में दुनिया के अन्य सब देशों का-उष्ण कटिबंधी से उत्तर ध्रुवीय तक का ऐसा संश्लेषण है कि कोई कलात्मक दृष्टि इससे उदासीन नहीं रह सकती।"

जापानी भाषा सीखने के साथ श्रीमाँ ने जापान में पुनः पेंटिंग करना शुरू किया। जापान में बनाई उनकी कलाकृतियाँ उनकी सर्वोत्तम कलाकृतियों में से हैं और जापान के प्रति उनके लगाव को व्यक्त करती हैं। उन्होंने एक बार कहा था कि "जापान में सीखने को सब कुछ था। कलात्मक दृष्टिकोण से चार वर्षों तक मैंने वहाँ चमत्कार पर चमत्कार अनुभव किये।" कला और जीवन की एकता ऐसी चीज है जो जापान से सीखने योग्य है। 28 जुलाई 1929 को श्रीमाँ ने कहा था-"सच्ची कला अखंड है और समग्रता से सम्बन्ध रखती है; वह एक है और जीवन के साथ गुंथी हुई है। प्राचीन यूनान और प्राचीन मिस्त्र में इस प्रकास की घनिष्ठ अखण्डता का कुछ नमूना तुम्हें मिलता है ; उनके चित्र और मूर्तियाँ तथा कला-सम्बन्धी अन्यान्य सभी कुछ किसी भवन-विशेष की स्थापत्य कला विषयक योजना के अंगभूत ही बनाया और सजाया जाता था। वहाँ का प्रत्येक ब्यौरा इस अखण्डता का ही एक भाग होता था। जापान में कला का यही स्वरूप है, अथवा कम से कम थोड़े दिन पहले तक, जब तक कि उस पर

उपयोगितावादी और व्यावहारिक आधुनिकतावाद का आक्रमण नहीं हुआ था, जब तक यही था। जापानी मकान कला की इस अखण्डता का सुन्दर नमूना होता है।"

मीरा और पॉल रिचार्ड एक वर्ष तक टोकियों में रहे। वहाँ डॉ. एस. ओखावा और उनकी पत्नी भी उसी मकान में रहते थे। ओखावा एशियन इतिहास के प्राध्यापक थे और भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति थी। एक इंटरव्यू में ओखावा ने 1957 में कहा था-"हम एक वर्ष तक साथ रहे थे। हम प्रति रात्रि एक घंटे के लिए ध्यान में बैठाते थे। मैं जैन का अभ्यास करता था और वे योग का।" श्रीमाँ ने श्रीमति ओखावा की एक पेंटिंग भी बनाई थी।

1917 में किसी समय मीरा और पॉल रिचार्ड क्योटो चले गये और अगले वर्ष तक वहीं रहे। क्योटो में उनका परिचय मेडम कोबायाशी (Kobayashi) से हुआ जो सर्जन थीं। कोबायाशी ने ध्यान की एक विशेष पद्धति सीखी थी जिसने बहुत लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया था। मेडम कोबायाशी की पेंटिंग श्रीमाँ ने बनाई थी। उनका सम्पर्क लम्बे समय तक रहा। मेडम कोबायाशी 1959 में पांडिचेरी आई थी और श्रीमाँ से मिली थी।
जापान में बनाये चित्रों में एक पेंसिल स्केच रवीन्द्रनाथ टैगोर का है जिस पर 11 जून 1916 तिथि अंकित है। टैगोर ने 11 जून 1916 को ही टोकियो में इम्पीरियल विश्वविद्यालय में भाषण दिया था। श्रीमाँ और टैगोर की भेंट 1919 में क्योटो में भी हुई थी। श्रीमाँ का बनाया हुआ एक चित्र कवि –कलाकार हिरासावा तेतसुओ (Hirasawa Tetsuo) का मिलता है जो बहुत सुन्दर है। इनके पारस्परिक परिचय का विवरण उपलब्ध नहीं है।

श्रीमाँ जानती थी कि उनकी नियति भारत पहुँचना और वहीं रहना है। जैसे ही परिस्थितियाँ अनुकूल हुई, वह पॉल रिचर्ड के साथ भारत के लिए चल पड़ी। 24 अप्रैल 1920 को वे भारत पहुँचे। यह महत्त्वपूर्ण दिन है जो दर्शन- दिवस के रूप में जाना जाता है। पाडिंचेरी में श्रीमाँ का जीवन एक बहुत व्यापक अध्ययन का विषय है। 1926 में जब श्री अरविन्द अपने सर्वांगीण योग की साधना में एकान्तवास में चले गये तो श्रीमाँ ने ही श्रीअरविन्द आश्रम का समस्त कार्यभार संभाला। वह निरन्तर व्यस्त होती चली गई। कला-सर्जना के लिए अब समय कहाँ था? उनकी प्राथमिकता थी योग-साधना और साधकों का पथ-प्रदर्शन।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि कला-सर्जना का स्वतः प्रवाह बिल्कुल थम गया था। समय-समय पर किये गये रेखांकनों में श्रीमाँ का अन्तः स्थित कलाकार अभिव्यक्त हुआ है। इस दौरान की ऑयल पेंटिंग बहुत कम हैं। हाँ, साधकों और जिज्ञासुओं को कला की शिक्षा देने, उसकी तकनीक की जानकारी प्रदान करने में उनकी रुचि यदा-कदा दिखलाई दी है। 1920 के दशक में श्रीअरविन्द के अनुज बारीन्द्र ने श्रीमाँ के निर्देशन में ऑयल पेंटिंग की शिक्षा ली थी। इसी दौरान एक पेंटिंग का निर्माण हुआ जिसे स्वयं श्रीमाँ ने 'Divine Consciousness emerging from the inconscient' नाम दिया था। श्रीमाँ इस पेंटिंग को पसन्द करती थी। भागवत चेतना के प्रतीक

के रूप में उभरता हुआ श्रीअरविन्द का चेहरा इसमें दिखलाई देता है। निश्चय ही, जिस समय यह कलाकृति निर्मित हुई, स्वयं श्रीअरविन्द वहां उपस्थित रहे होंगे। श्रीमाँ के अपने और श्रीअरविन्द के रेखांकन बहुत जीवन्त हैं। अपने शिष्यों के रेखांकन भी श्रीमाँ ने किये थे जिनमें नलिनीकांत गुप्त, अनिल बरन राय, चंदूलाल, वसुधा चम्पकलाल, प्रणव, द्युमान के रेखांकन उल्लेखनीय हैं।

2 फरवरी 1935 को बनाया गया चम्पकलाल का चित्र विलक्षण और अद्वितीय इस दृष्टि से माना जा सकता है कि श्रीमाँ ने यह आँखें बंद करके बनाया था। उन्होंने इसके बारे में श्रीअरविन्द से कहा था-'बस, पेंसिल स्वतः चलती रही।' उन्होंने 12 मई 1951 की बातचीत में कहा है-
"मैंने तुमसे कहा है कि तुम जो कुछ करना चाहो, पहली चीज है अपने हाथ के कोषों में चेतना भर देना। यदि तुम खेलना चाहते हो, यदि तुम काम करना चाहते हो, यदि तुम कोई चीज अपने हाथ से करना चाहते हो तो जब तक तुम अपने हाथ के कोषों में चेतना नहीं भर देते, तुम कभी कोई अच्छी चीज नहीं भर सकोगे।... हाथ को सचेतन बनाने के लिए सभी प्रकार के अभ्यास किये जा सकते हैं और फिर एक क्षण ऐसा आता है जब वह इतना सचेतन बन जाता है कि तुम इसे कार्य सम्पन्न करने के लिए छोड़ सकते हो, यह उन्हें स्वयं अपने –आप, तुम्हारे नन्हें मन के हस्तक्षेप किये बिना, सम्पन्न करता है।"

श्रीमाँ ने आश्रम में अनेक व्यक्तियों को कला-सर्जना के लिए प्रोत्साहित किया। बारीन्द्र के अलावा उन्होंने 1930 के दशक में संजीवन को और 1950 के दशक में हुता को ऑयल पेंटिंग की शिक्षा दी और उत्साह प्रदान किया। श्रीअरविन्द के कालजयी महाकाव्य 'सावित्री' पर आधारित हुता के चित्र 'Meditation on Savitri' में संकलित है। उनकी रहस्य –कथा अलग है। अपने बनाये चित्रों के बारे में श्रीमाँ की दृष्टि अनासक्त थी। उन्होंने अलग समय, स्थान पर बहुत से व्यक्तियों को अपनी पेंटिंग दे दी थी। एक शिष्य ने एक बार पूछा था-'क्या हमें उनको एकत्र करने का प्रयास नहीं करना चाहिए?' श्रीमाँ ने शांतिपूर्वक कहा-'क्यों? क्या यह इतना महात्वपूर्ण है?'

शिष्य ने कहा-'हाँ, निश्चय ही। ऐसी कहाकृतियों को खोजा जाना चाहिए और सुरक्षित रखना चाहिए। आपने उन पर इतना अधिक परिश्रम किया था।'

श्रीमाँ ने कहा-'कोई बात नहीं।'
'लेकिन, माँ, क्या आप नहीं सोचती कि यदि उन चित्रों को सुरक्षित नहीं रखा गया तो बड़ी हानि होगी?'- शिष्य ने कहा।

श्रीमाँ ने शांतिपूर्वक कहीं दूर देखते हुए धीरे से कहा-'तुम जानते हो, हम शाश्वतता में निवास करते हैं।'

माँ के स्वरूप

- श्रीअरविंद

... माँ केवल सबपर ऊपर से शासन ही नहीं करतीं, अपितु इस निरंतर त्रिधा जगत में उतार आती हैं। निर्वैयक्तिक रूप में, यहाँ की सारी वस्तुएँ, अज्ञान की गतिविधि भी, अपनी शक्ति को प्रच्छन्न रखनेवाली माँ ही हैं; वे उन्हीं की क्षीणीकृत सत्त्ववाली सृष्टियाँ हैं, उन्हीं की प्रकृति देह और प्रकृतिशक्ति हैं, और उनका अस्तित्व इसलिये है कि परमेश्वर के रहस्यमय आदेश से चालित होकर, एक ऐसी चीज को कार्यान्वित करने के लिये जो कि अनन्त की संभावनाओं में विद्यमान थी, माँ ने यह महान् आत्मबलिदान स्वीकार किया है और अज्ञान के अन्त:करण और रूपों को अवगुण्ठन की तरह धारण किया है। ...

... माँ के इस विश्वपरिचालन में, पार्थिव लीला के साथ उनके व्यवहार में, उनके चार महारूप, उनकी प्रधान शक्तियों और विग्रहों में से चार, सामने रहे हैं। उनके एक विग्रह में है प्रशान्त विशालता, व्यापक ज्ञान, अचंचल मांगल्य, अपार करुणा, अतुल अद्वितीय महिमा, विश्वराट् गौरव महिमा । दूसरे में मूर्त है उनके भास्वर वीर्य और अदम्य आवेग की शक्ति, उनका योद्धभाव, उनका सर्वजयी संकल्प, उनकी प्रखर क्षिप्रता और प्रलयंकर प्रताप। तीसरा है कान्तिमय, माधुर्यमय, सौन्दर्यमय, वहाँ है माँ का सौन्दर्य, सुसंगति और सुचारु छन्द का प्रगाढ़ रहस्य, उनका विचित्र सुकुमार वैभव, उनका दुर्निवार आकर्षण, उनकी मोहिनी मधुरिमा। चौथा विभूषित है माँ के अंतरंग ज्ञान, निपुण, निर्दोष कर्म और सब चीजों में प्रशान्त और शुद्ध पूर्णता के सामर्थ्य से । ज्ञान, बल, सामंजस्य, संसिद्धि उनके विभिन्न गुण हैं; वे इन्हें ही जगत में अपने साथ लाते हैं, अपनी विभूतियों को मानवीय वेश में व्यक्त करते हैं और जो लोग अपनी पार्थिव प्रकृति को माँ के साक्षात् तथा जीवन्त प्रभाव की ओर खोल सकते हैं उनमें उनकी ऊर्ध्वस्थ दिव्य स्थिति के धर्मानुसार उन्हें प्रतिष्ठित करेंगे। इस चतुष्टय को हम ये चार महान् नाम देते हैं, महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती।

राजराजेश्वरी महेश्वरी आसीन हैं विचारमानस और इच्छाशक्ति से ऊपर की विशालता में और उन्हें वह शोधित तथा उन्नीत करके ज्ञानस्वरूप और बृहत् बनाती या पराज्योति से प्लावित करती हैं। कारण, महेश्वरी ही वह शक्तिमयी ज्ञानमयी हैं जो हमें अतिमानसिक आनन्त्यों और वेश्व बृहत्ताओं की ओर, परमा ज्योति के ऐश्वर्य की ओर, अलौकिक ज्ञान के भण्डार की ओर, माँ की चिरन्तन शक्तियों की अपरिमेय गति की ओर खोलती हैं। अचंचला और अद्भुत है वह महिमामयी चिरप्रशान्ता । उन्हें कोई भी चीज चला नहीं सकती क्योंकि सकल ज्ञान उनमें है; ऐसी कोई चीज नहीं जिसे वह जानना चाहे पर जो उनसे छिपी रहे सकल वस्तु, सकल सत्ता, उनकी प्रकृति, उन्हें क्या चलाता है, जगत् का विधान, उसके कालविभाग, सब कुछ कैसा था, है और होगा, यह सब उन्हें ज्ञात है। उनमें वह बल है जो

सबका सामना करता और सबको वश में करता है और उनकी बृहत् दुराधिगम्य ज्ञानवत्ता और समुन्नत प्रशान्तशक्ति के सामने अंत में कोई भी नहीं ठहर सकता। वह सम हैं, धीर हैं, अटल उनकी इच्छाशक्ति है; मनुष्यों से वह उनकी प्रकृति के अनुसार व्यवहार करती है और वस्तुओं तथा घटनाओं से उनकी शक्ति और उनके अन्तरस्थ सत्य के अनुसार। उनमें पक्षपात है ही नहीं, परंतु वह परमेश्वर के आदेशों का अनुसरण करती हैं और किन्हीं को ऊपर उठाती हैं और किन्हीं को नीचे गिराती या अपने से अलग हटाकर अंधकार में डाल देती हैं।

ज्ञानियों को वह और भी महान्, और भी ज्योतिर्मय ज्ञान देती हैं; दृष्टिवानों को वह अपनी मन्त्रणा में सम्मिलित करती हैं; विरोधियों को वह विरोध के परिणाम भोग कराती हैं: अज्ञ और मूढ़ जनों को वह उनकी अंधता के अनुसार लिये चलती हैं। प्रत्येक मनुष्य में उसकी प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों को वह उनकी आवश्यकता, प्रवृत्ति और वांछित प्रकृति के अनुसार उत्तर देती और संचालित करती हैं, उनपर यथावश्यक दबाव डालती या उन्हें उनकी प्रिय स्वतंत्रता में छोड़ देती हैं ताकि वे अज्ञान-राहों में फले-फूले या विनष्ट हो जायें। कारण, वह सबसे ऊपर हैं, जगत् की किसी भी वस्तु से बद्ध नहीं, आसक्त नहीं। फिर भी, अन्य किसी की भी अपेक्षा उनका हृदय जगन्माता का है।

कारण, उनकी करुणा अनन्त और अपार है, उनकी आंखों में सब कोई, असुर, राक्षस पिशाच, विद्रोही और विरुद्धाचारी भी उन्हीं की सन्तान और उन एक के अंश हैं। उनका अस्वीकरण स्थगन ही है और उनसे मिला हुआ दण्ड उनका प्रसाद। किंतु उनकी करुणा के कारण उनके ज्ञान पर पर्दा नहीं पड़ता, उनका कर्म निर्दिष्ट पथ से नहीं हटताः कारण, वस्तुओं का सत्य ही उनका विषय है, ज्ञान उनका शक्तिकेन्द्र है और हमारे अंतरात्मा तथा हमारी प्रकृति को दिव्य सत्य में निर्मित करना उनका व्रत और प्रयास।

महाकाली की प्रकृति और है। बृहत्ता नहीं, उत्तुंगता, ज्ञान नहीं, शक्ति और बल उनके विशिष्ट गुण हैं। उनमें दुनिवार तीव्रता है, संसिद्धि के लिये शक्ति का विपुल आवेग है, सारी सीमाओं और बाधाओं को चूर्ण करने के लिये धावन करनेवाली दिव्य प्रचण्डता है। उनका सारा दिव्यत्व प्रस्फुटित होता है। रुद्रकर्म की प्रभा में वह है क्षिप्रता के लिये, आशुफलदायिनी प्रक्रिया के लिये, द्रुत, ऋजु आघात के लिये, सर्वजयी सम्मुखीन आक्रमण के लिये, असुर के लिये भयंकर उनका मुखमण्डल है, भगवद्विद्वेषियों के लिये निदारुण और निर्मम उनका चित्त है; विश्वलोकों की रणरंगिणी हैं वह, संग्राम से वह कभी भी विमुख नहीं होती अपूर्णता उन्हें सहन नहीं, मनुष्य में जो कुछ भी अनिच्छु है उसके प्रति उनका व्यवहार रूढ़ है, जो कुछ अज्ञान और अंधकार के लिये हठ करता है उसपर कठोर है वह विश्वासघात, मिथ्याचार और विद्वेष पर उनका कोप अविलम्ब और भीषण होता है, दुष्ट इच्छा पर उनके शूल का प्रहार तुरंत होता है। भागवत कर्म में औदासीन्य, अवहेलना और आलस्य उन्हें सह्य नहीं: असमय सोनेवाले और दीर्घसूत्री को,

आवश्यकता होने पर वह तुरत तीक्ष्ण वेदना से प्रहारित करके जगाती हैं। क्षित्र, ऋजु और अकपट प्रेरणाएं, अकुण्ठ और अव्यभिचारिणी गतिधाराएं, अग्निशिखा की तरह ऊर्ध्वगामिनी अभीप्सा - ये महाकाली के संचार हैं। अदम्य उनको अन्तवृत्ति है, श्येन पक्षी की उड़ान की तरह उत्तुंग और दूरप्रसारिणी उनकी दृष्टि और इच्छाशक्ति है, ऊर्ध्वपथ में द्रुत उनकी गति है, उनकी भुजाएं मारने और तारने के लिये फैली हुई हैं। कारण, वह भी माँ ही हैं; उनका स्नेह उतना ही तीव्र है जितना कि उनका कोप और उनमें गंभीर तथा आवेग आप्लुत करुणा है।

जब उन्हें अपने बल के साथ हस्तक्षेप करने का अवसर मिलता है तब साधक की गति को रुद्ध करनेवाले विघ्न, उसपर आक्रमण करनेवाले शत्रु संहत वस्तुओं को तरह एक ही क्षण में चूर्ण हो जाते हैं। विरोधी के लिये उनका कोप भयंकर है और दुर्बल और कायर के लिये उनके दबाव का प्रवेग पीड़ाकर, किंतु महान, बलवान और उदात्त जनों का प्रेम पाती हैं वह उनसे पूजित हैं वह कारण, वे यह अनुभव करते हैं कि माँ के प्रहार उनके आधार में जो विद्रोही है उसे ठोक-पीट करके समर्थ और निर्दोष सत्य बना देंगे, जो कुटिल और विकृत है उसपर सीधा हथौड़ा चलायेंगे और जो अशुद्ध या सदोष है उसे निकाल बाहर करेंगे। वह न हों तो जो काम एक दिन में किया जाता है उसमें शताब्दियां लग सकती थीं, उनके बिना आनंद विशाल और गंभीर या कोमल, मधुर और सुंदर तो हो सकता था किंतु उसे अपनी परम पराकाष्ठाओं का प्रज्वलित उल्लास न मिलता। वह ज्ञान को विजयिनी शक्ति देती हैं, सौन्दर्य एवं सामंजस्य में उच्च ऊर्ध्वगामिनी गति और पूर्णता के मंद और कठिन श्रम में यह आवेग लाती हैं जो शक्ति को बहुगुणित करता है और लम्बे मार्ग को छोटा।

परतम आनंद, उच्चतम उच्चता, महत्तम लक्ष्य और विशालतम दृष्टि से न्यून रहनेवाली कोई भी चीज उन्हें तुष्ट नहीं कर सकती। अतएव भगवान् की विजयिनी शक्ति उन्हीं के साथ है और यदि महासिद्धि बाद में न होकर अभी ही हो सके तो ऐसा उन्हीं के तेज, आवेग और क्षिप्रता के प्रसाद से होगा। ज्ञान और शक्ति ही परमा माता की एकमात्र अभिव्यक्तियाँ नहीं; उनकी प्रकृति का एक और भी सूक्ष्मतर रहस्य है और उसके बिना ज्ञान और शक्ति अधूरी वस्तुएं होंगी और पूर्णता पूर्ण नहीं होगी।

उनसे ऊपर है शाश्वत सौन्दर्य का आह्लुत्य, दिव्य सामंजस्यों का इन्द्रिय- अगम्य रहस्य, दुर्निवार विश्वव्यापक श्री और आकर्षण की मोहिनी शक्ति जो वस्तुओं, शक्तियों और सत्ताओं को खींचती और साथ धरे रखती और परस्पर सम्मिलित और संयुक्त होने को बाध्य करती है ताकि अन्तराल से एक प्रच्छन्न आनंद लीलायित होवे और उन्हें अपने छंद और अपने रूप बनावे। यह महालक्ष्मी की शक्ति है और देहधारी जीवों के चित्त के लिये दिव्य शक्ति का इससे अधिक आकर्षक रूप और कोई नहीं। महेश्वरी इतनी अति स्थिर, महीयसी और दूर लग सकती हैं कि पार्थिव प्रकृति की क्षुद्रता उनतक पहुंचने या उन्हें धारण करने में असमर्थ हो, महाकाली उसकी दुर्बलता की सहनशक्ति के लिये अति क्षिप्र और प्रचण्ड हो सकती हैं, किंतु महालक्ष्मी की ओर तो सब कोई हर्ष और चाह से

मुड़ते हैं। कारण, वह भगवान् की उन्मादिका माधुरी का जादू डालती हैं उनके निकट होना गंभीर सुख है और उन्हें हृदय में अनुभव करना जीवन को आह्लादमय और अद्भुत बना देना है; श्री, शोभा और स्नेहधारा उनसे वैसे ही प्रवाहित होती है जैसे सूर्य से प्रकाश और जहाँ कहीं वह अपनी अद्भुत दृष्टि जमाती या अपनी मुस्कान का माधुर्य टपकाती हैं, अंतरात्मा पकड़ में आ जाता, बन्दी हो जाता और अगाध आनंद की गहराइयों में डूब जाता है। उनके हाथों के स्पर्श में चुम्बकत्व है, उनके करकमलों का गुह्य कोमल प्रभाव मन, प्राण और शरीर को मार्जित करता है और जहाँ उनके चरण पड़ते हैं वहाँ बह निकलते है चित्तोन्मादक आनंद के अलोकिक स्रोत ।

तथापि इस मोहिनी शक्ति को प्रसन्न करना या अपने अंदर बसाये रखना सहज नहीं। महालक्ष्मी प्रसन्न होती हैं मन और अंतरात्मा के सामंजस्य और सौन्दर्य से विचार और अनुभव के सामंजस्य और सौन्दर्य से प्रत्येक बहिर्मुख कर्म और गतिविधि से सामंजस्य और सौन्दर्य से जीवन और चतुपार्श्व के सामंजस्य और सौन्दर्य से। जहाँ निगृढ़ विश्वानन्द के छंदों के साथ साम्य है, जहाँ सर्व-सुंदर की पुकार को उत्तर दिया जाता है, जहाँ स्वरसंगति है, ऐक्य है, भगवान् की ओर मुड़े हुए अनेकानेक जीवनों का सानन्द प्रवाह है, वैसे वातावरण में ही रहने को वह सम्मत होती हैं। किंतु जो कुछ कुत्सित, नीच और हीन है, जो कुछ दीन, मलिन और अशुचि है, जो कुछ निर्मम और रुक्ष है, वह सब उनके आगमन का प्रतिरोध करता है। जहाँ प्रेम और सौन्दर्य है नहीं या होना नहीं चाहते, वहाँ वह नहीं आतीं; जहाँ वे अपकृष्ट वस्तुओं से मिश्रित और विकृत हो जाते हैं, वहाँ से प्रस्थान करने के लिये वह जल्दी मुड़ जाती हैं या वहाँ वह अपने वैभव उंडेलने को इच्छुक नहीं होतीं।

यदि वह अपने आपको मनुष्यों के हृदयों में स्वार्थपरता, घृणा, ईर्ष्या, असूया, विद्वेष और कलह से घिरा पाती हैं, यदि देवोद्दिष्ट अर्घ्यपात्र में विश्वासघातकता, लोभ और कृतघ्नता मिली हुई है, यदि आवेग की स्थूलता और अमार्जित कामना भक्ति को अवनत करती है, तो ऐसे हृदयों में सोम्या सोन्दर्यमयी देवी नहीं ठहरेंगी। एक दैवी घृणा से उनका चित्त उचाट हो जाता है और वह वहाँ से हट जाती हैं, कारण, उनकी प्रकृति आग्रह या आयास करने की नहीं; या वह अपना सुखद प्रभाव फिर से प्रतिष्ठित करने के पहले अपने मुखड़े पर अवगुण्ठन डालकर इसकी प्रतीक्षा करती हैं कि यह कटु और विषाक्त आसुरी वस्तु वर्जित और विलुप्त हो जाये। संन्यासी की रिक्तता और रुक्षता उन्हें पसंद नहीं, हृदय के गभीरतर आवेगों का निरोध और अंतरात्मा तथा जीवन के सौन्दर्य अंशो का कठोर दमन भी नहीं। कारण, वह प्रेम एवं सौन्दर्य द्वारा ही मनुष्यों पर भगवान् का जुआ डालती हैं। उनको समुच्यतम सृष्टियों में जीवन परिणत हो जाता है स्वर्गिक श्रीसम्पन्न कलाकृति में और निखिल सत्ता परिणत हो जाती है पुनी आनंद के काव्य में, जगत् की सम्पदा को एक महत्तम व्यवस्था क्रम के लिये एकत्र और सज्जित किया जाता है, अति साधारण और अति सामान्य वस्तुएं भी महालक्ष्मी की एकत्वसंबोधि और उनकी अंतःसता के श्वास से अनोखी बन जाती हैं। उन्हें हृदय में स्थान देने से वह ज्ञान को अपूर्व शिखरों पर पहुंचा देती हैं और उसके सामने सारे ज्ञान से अतीत उल्लास के गुप्त रहस्यों को प्रकट करती हैं, भक्ति को भगवान् के तीव्र आकर्षण का उत्तर देती हैं, शक्ति और बल को यह

छन्द सिखाती हैं जो उनके कार्यों के वीर्य को समंजस और परिमित रखता है और संसिद्धि पर ऐसी मोहिनी डाल देती हैं जिससे वह चिरस्थायिनी हो जाती हैं। महासरस्वती मां की कर्मशक्ति है, उनको पूर्णता एवं व्यवस्था की वृत्ति है। वह चारों में सबसे कनिष्ठा हैं, कार्यनिष्पादन की क्षमता में सबसे निपुण हैं और स्थूल प्रकृति के निकटतम हैं। महेश्वरी विश्वशक्तियों की बृहत् धाराएं निर्दिष्ट करती है, महाकाली उनकी ऊर्जा और वेग को प्रेरित करती हैं, महालक्ष्मी उनके छंदों और मापों को प्रकट करती है, किंतु महासरस्वती उनके संगठन और क्रियान्वयन के ब्योरों की, अंगों के संबंध, शक्तियों के प्रभावी संयोजन और परिणाम तथा परिपूर्ति के अचूक यथातथ्य की अध्यक्षा हैं। वस्तुओं की विद्या, कार्यपद्धति और प्रयोगरीति महासरस्वती के प्रान्त हैं।

सिद्धकर्मी का अंतरंग और यथायथ ज्ञान, उसकी सूक्ष्मदर्शिता और धीरता, उसके संबोधिमय मन, चेतन हाथों और दर्शिनी आंखों की निर्मूलता, इन्हें महासरस्वती अपनी प्रकृति में निरन्तर धारण किये रहती हैं और जिन्हें उन्होंने वरण किया है उनको ये चीजें प्रदान कर सकती हैं। यह शक्ति सारे लोकों की सबल, अक्लांत, सतर्क और निपुण निर्मात्री, विधात्री, शासिका प्रयोगज्ञानवती, कलावती और श्रेणी-विभागकर्त्री हैं। जब वह प्रकृति के रूपांतर और नवनिर्माण को हाथ में लेती हैं उनका कार्य श्रमसाध्य होता है, ब्योरों में बारीकी से जाता है और प्रायः हमारी अधीरता को धीमा और असमाप्य लगता है, किंतु होता है अविराम, सर्वांगीण और दोषलेशशून्य। कारण, उनके कर्मों में रहनेवाली इच्छा सतर्क, अतन्द्र और अक्लान्त है; वह हम पर आनत होकर प्रत्येक छोटे-छोटे ब्योरे को देखती और स्पर्श करती है, प्रत्येक बारीक दोष छिद्र कुटिलता या असम्पूर्णता को देखती हैं, जो कुछ किया जा चुका है और बाद के लिये जो करना अभी शेष रह गया है उसपर विचार करती, उसे ठीक-ठीक तोलती हैं। उनकी दृष्टि के लिये कोई भी चीज अति तुच्छ या आपात-नगण्य नहीं; कोई भी चीज कितनी ही स्पर्श अगम्य, छद्मयुक्त या गुप्त क्यों न हो, वह उनसे नहीं बच सकती।

वह हर अंग को गढ़ती और फिर से गढ़ती हुई उसपर तबतक परिश्रम करती हैं जबतक कि वह अपना सच्चा रूप न प्राप्त कर लेवे, समग्र में अपने ठीक स्थान पर न रख दिया जाये और अपना ठीक-ठीक कार्य पूरा न करे। निरन्तर अध्यवसाय से वस्तुओं का आयोजन और पुनरायोजन करने में उनकी आंखें एक साथ ही सारी आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति के उपाय को देखती हैं, उनकी संबोधि यह जानती है कि किसे वरण करना है और किसका वर्जन, और वह सही यन्त्र, सही समय, सही अवस्थाओं और सही प्रक्रिया को सफलता से निर्धारित करती हैं। अनवधान, अवहेलन और आलस्य से उन्हें घृणा है; किसी भी तरह जल्दबाजी से या उलट-पुलट कर काम निपटा देना, कोई भी अपटुता, न्यूनाधिकता और लक्ष्यभ्रष्टता, करणों और वृत्तियों का मिथ्या अनुकूलन और अपव्यवहार और चीजों को बिना किये या आधा करके छोड़ देना उनकी प्रकृति के लिये अप्रिय और विजातीय है। जब उनका कार्य शेष हो जाता है तो देखने में आता है कि कोई भी बात भुलायी नहीं गयी है, कोई भी अंश अस्थान में नहीं है, छूट नहीं गया है, दोषयुक्त अवस्था में नहीं छोड़ दिया गया है, सब कुछ ठोस, निर्मूल, सम्पूर्ण और प्रशंसनीय

है। पूर्ण पूर्णता से न्यून रहनेवाली कोई भी चीज उन्हें तुष्ट नहीं करती और उनकी सृष्टि की सर्वांगपूर्ति के लिये यदि आवश्यक हो तो वह अनन्त काल तक श्रम करने को प्रस्तुत है। अतः माँ की सारी शक्तियों में महासरस्वती ही मनुष्य और उसके सहस्रों दोषों को सबसे अधिक सहती रही हैं। सदया, सुस्मिता, समीप और सदा सहाय हैं वह, वह आसानी से विमुख या हताश नहीं होती, बार बार की विफलता के बाद भी उनका आग्रह रहता है; पद-पद पर उनका हाथ हमें संभाले रहता है, किंतु शर्त यह है कि हमारा संकल्प अव्यभिचारी हो, हम ऋजु और एकनिष्ठ हों, कारण, द्विधा मन उन्हें सहन नहीं और उनका उद्भासक रूप विद्रूप अभिनय, छलकला, आत्मप्रवंचना और पाखण्ड के लिये निर्मम होता है। हमारे अभावों की पूर्ति के लिये वह माँ हैं, हमारी कठिनाइयों में बंधु हैं, धीर और प्रशांत मन्त्री और परामर्शदाली हैं; वह अपनी भास्वर मुस्कान से विषाद, अवसाद और खिन्नता के बादल छिन्न भिन्न कर देती हैं, सदा नित्य विद्यमान सहायता की याद दिलाती हैं, चिरप्रकाश सूर्यकिरण की ओर अंगुलीनिर्देश करती हैं; वह हमें उच्चतर प्रकृति की सर्वांगपूर्णता की ओर चलानेवाली प्रेरणा में दृढ़, अचंचल और अध्यवसायी हैं। अन्य शक्तियों का सारा कार्य अपनी सम्पूर्णता के लिये महासरस्वती पर अवलम्बित है, क्योंकि वे ही भौतिक आधार को सुनिश्चित करती हैं, अंग-प्रत्यंग को सविस्तार प्रस्फुटित करती हैं और इमारत को खड़ा करती और उसका कवच कस देती हैं।
मां भगवती के और भी कई महान् विग्रह है, परंतु उन्हें उतार लाना अधिक कठिन था और पृथ्वी पुरुष के क्रमविकास में वे उतनी स्पष्टता से सामने खड़े नहीं हुए। .....
श्री अरविंद – माताजी के विषय में
***

आप अपनी पुस्तक "माता" में श्रीमाँ (हमारी माताजी) का ही जिक्र करते हैं न?

हाँ ।

क्या वह "व्यष्टिभावापन्न" भगवती माता ही नहीं हैं जिन्होंने "सत्ता के इन दो विशालतर स्वरूपों की परात्पर और विश्वगत की शक्ति को " मूर्तिमान् किया है?

हाँ, वही हैं।

वह हमारे प्रति अपने गंभीर और महान् प्रेम के वश ही यहाँ (हमारे बीच) अंधकार और मिथ्यापन, भूल-भ्रांति और मृत्यु के अंदर अवतरित हुई हैं न?

हाँ।

17.8.1938

ऐसे बहुत से लोग हैं जिनका मत है कि श्रीमाँ मनुष्य थीं पर अब उन्होंने भगवती माता को अपने अंदर मूर्तिमान् किया है और उनका विश्वास है कि श्रीमाँ की प्रार्थनाएं इस मत को पुष्ट करती हैं। पर, मेरे मन की धारणा, मेरे अंतरात्मा का अनुभव यह है कि वे स्वयं भगवती माता ही हैं जिन्होंने अंधकार, दुःख कष्ट और अज्ञान का जामा पहनना इसलिये स्वीकार किया है कि वे सफलतापूर्वक हम मनुष्यों को ज्ञान, सुख और आनंद की ओर, तथा परम प्रभु की ओर ले जा सकें।

भगवान् स्वयं मार्ग पर चलकर मनुष्यों को राह दिखाने के लिये मनुष्य का रूप धारण करते हैं और बाहरी मानव प्रकृति को स्वीकार करते हैं। पर इससे उनका 'भगवान्' होना खतम नहीं हो जाता। यह एक अभिव्यक्ति होती है, बढ़ती हुई भागवत चेतना अपने-आपको प्रकट करती है। यह मनुष्य का भगवान् बदल जाना नहीं है। श्रीमाँ अपने आंतर स्वरूप में बचपन में भी मानवत्व से मे ऊपर थीं। इसलिये 'बहुत से लोगों' का जो उपर्युक्त मत है वह भ्रमात्मक है।

17.8.1938

मेरी यह भी धारणा है कि उनकी प्रार्थनाएं हम अभीप्स जीवों को दिखलाने के लिये लिखी गयी हैं कि भगवान के सामने किस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये। (क्या यह ठीक है?)

हाँ।

17.8.1938

* ***

माताजी की अंशविभूतियां

- श्रीअरविंद

आपके इस कथन का ठीक-ठीक अभिप्राय क्या है : "सदा इस प्रकार आचरण करो मानों माताजी तुम्हारी ओर ताक रही हों; क्योंकि वे सचमुच में सदा उपस्थित रहती हैं"?
माताजी की एक अंशविभूति प्रत्येक साधक के साथ हर समय विद्यमान रहती है। पुराने दिनों की बात है जब वे सारी रात समाधि में बिताया करती थीं और आश्रम में कार्य नहीं करती थीं, वे अपने साथ उस सबका ज्ञान लेकर लौटा करता थीं जो कुछ भी किसी भी व्यक्ति के साथ होता था। आजकल वैसा करने के लिये उनके पास समय नहीं।

16-7-1935

यह सब अत्यंत मनोरंजक है; और मैं समझता हूँ स्वयं आपकी भी इतनी अंशविभूतियां हैं। अवश्य ही उनका उद्देश्य होगा हमें संरक्षण प्रदान करना।
अपनी किन्ही भी अंशविभूतियों के बारे में मुझे कुछ पता नहीं। जहाँ तक माताजी की अंशविभूतियों का संबंध है, वे वहाँ संरक्षण देने के लिये नहीं बल्कि व्यक्ति के साथ वैयक्तिक संबंध या संपर्क को सहारा देने के लिये उपस्थित हैं, और जहाँ तक वह उन्हें क्रिया करने दे वहाँ तक क्रिया करने के लिये भी।

16-7-1935

कृपया हमें अंशविभूतियों के विषय में समझाने के लिये इन पर कुछ अधिक प्रकाश डालिये। कैसे वे वैयक्तिक संबंध को सहारा देती हैं? मैं समझता था कि सभी वैयक्तिक संबंध सीधे माताजी के साथ होते हैं; किसी सहकारी के द्वारा नहीं! जब 'क्ष' कहता है कि उसे माताजी का भौतिक स्पर्श अनुभूत होता है, तो उसका संपर्क किसके साथ होता है- माताजी या अंशविभूति? और फिर, माताजी के जो विभिन्न रूप हम स्वप्नों में देखते हैं वे भी क्या उनकी अंशविभूतियां होते हैं?

इन वस्तुओं के संबंध में लिखना नितांत ही कठिन है, क्योंकि तुम सब इनके विषय में महामूढ़ हो और पग-पग पर समझने में गलती करते हो। अंश- विभूति माताजी की कोई सहकारी नहीं, स्वयं माताजी ही होती हैं। वे अपने शरीर से बंधी नहीं, बल्कि अपने को जिस रूप में चाहें बाहर प्रकट कर सकती है (अपनी अंशविभूति के रूप में बाहर जा सकती हैं)। जो अंश बाहर जाता है वह अपने को उस व्यक्तिगत संबंध के स्वरूप के अनुकूल बना लेता है जो माताजी का किसी साधक-विशेष के साथ होता है और वह संबंध प्रत्येक साधक के साथ अलग-अलग होता है, पर

ऐसा करने से उस अंशविभूति के स्वयं माताजी ही बने रहने में कोई बाधा नहीं पड़ती। उस अंश का साधक के समीप उपस्थित रहना उसके विषय में साधक की सचेतनता पर निर्भर नहीं करता। यदि प्रत्येक वस्तु साधक की उपरितलीय चेतना पर ही निर्भर करे तो कहीं भी दिव्य क्रिया के होने की संभावना नहीं रहेगी; मानव-कीट नित्य- शाश्वत काल के लिये मानव-कीट ही रहेगा और मानव-गर्दभ मानव-गर्दभ । कारण, यदि भगवान् पर्दे के पीछे न रह सकते हों तो कैसे इनमें से कोई युग- युग तक भी अपने कीटपने और गर्दभपने के सिवा किसी और चीज से कभी भी सचेतन हो सकेगा?

("जब 'क्ष' कहता है कि उसे माताजी का भौतिक स्पर्श अनुभूत होता है। तो उसका संपर्क किसके साथ होता है... ?" इस प्रश्न के सामने हाशिये में श्री अरविन्द ने लिखा, "माताजी के साथ अंशविभूति उसमें सहायता करती है उसका काम ही यही है। ")

7-7-1935

माताजी जब अतिभौतिक स्तर पर कार्य करती हैं तो वे बाहर एक भिन्न प्रकार की अंशविभूति के रूप में प्रत्येक साधक के पास जाती हैं।

11-12-1933

स्वप्नावस्था में होनेवाले अनुभव में हमें कभी-कभी माताजी के दर्शन होते है। क्या वह रूप उनकी अंशविभूति होता है या स्वयं उनका शरीर ही?
एक अंशविभूति। उनका भौतिक शरीर स्वप्नानुभव में भला कैसे दिखायी दे सकता है?

7-7-1933

ऐसा लगता है कि तीसरे पहर की नींद के समय मुझे बहुधा माताजी का संपर्क प्राप्त होता है। क्या तब माताजी ही अपनी अंशविभूति भेजती है?
हां, या वास्तव में उनका कोई अंश सदा ही तुम्हारे साथ रहता है।

14-12-1933

श्रीमाँ के कथन

श्वेत कमल, रवीन्द्र

व्यवस्थित रहना

माताजी चीजों को व्यवस्था में रखना बहुत पसन्द करती थीं। स्वयं अपनी रखी हुई चीजों को वे आधी रात के अंधेरे में भी तुरन्त ढूँढ कर निकाल सकती थीं। इस विषय पर बोलते हुए उन्होंने कहा :
“चीजों को उनके उचित क्रम में व्यवस्थित रखना बहुत मजेदार और मनोरंजक काम है। तुम चीजों को केवल चीजें समझते हो, उनसे प्यार नहीं करते। अगर तुम्हें अपनी चीजों से प्यार हो तो वे तुमसे बातें करेंगी। उन्हें पता होता है कि उन्हें कहाँ रखा जाना चाहिये। उनमें ऐसे स्पन्दन होते हैं जिन्हें तुम अपने मन के कारण नहीं पकड़ पाते। वे एक विशेष क्रम में रखी जाना चाहती हैं। तुम उनकी भाषा का अपनी चेतना में अनुवाद कर सकते हो। अगर वे ठीक जगह पर नहीं हैं तो वे तुम्हें बुलाएंगी। अगर कोई दुर्घटना होनेवाली है तो वे तुम्हें पहले से सावधान कर देंगी । विश्व में हर चीज का अपना स्थान है, परन्तु सब इधर-उधर फेंक और बिखेर दी गयी हैं। अगर तुम हर चीज को व्यवस्था में रख सको तो वह दिव्य व्यवस्था होगी। उसके बाद कोई कष्ट न होगा। छोटी-से-छोटी चीज का भी वैश्व व्यवस्था के साथ सम्बन्ध होता है। तुम्हें समस्त विश्व को अपनी चेतना में रखना चाहिये।”

(अप्रकाशित)

-------------------------------OOOOOOOOOOO---------------------------------

क्रोध

“नहीं, क्रोध करने का बिलकुल कोई कारण नहीं है। क्रोध दुर्बलता की निशानी है, कारण चाहे कुछ क्यों न हो, क्रोध को कभी न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता । तुम क्रोध तब करते हो जब तुम एक न्यायाधीश या निर्णायक की भूमिका लेकर यह निश्चय करने बैठते हो कि क्या होना और क्या नहीं होना चाहिये । लेकिन तुम स्वयं ही सत्य को नहीं जानते, फिर दूसरों के आचरण के लिये नियम कैसे बना सकते हो ? तुम सोचते हो कि हर चीज तुम्हारे विचारों के अनुसार होनी चाहिये। अगर कोई चीज किसी और दिशामें जाती है तो तुम नाराज हो जाते हो। तुम सोचते हो कि

तुम सारे संसार के केन्द्र हो और सारे संसार को तुम्हारी इच्छाओं के अनुसार चलना चाहिये। लेकिन क्यों ? तुम्हारे अन्दर ऐसी कौन-सी विशेष चीज है कि तुम्हारी इच्छा को पूरा करना जरूरी हो? तुम विश्व में करोड़ों, अरबों बिन्दुओं में से बस एक बिन्दु हो ।

(अप्रकाशित)

श्वेत कमल, रवीन्द्र, पृ 147

-------------------------------OOOOOOOOOOO--------------------------------

शरणागत

अपने-आप में आदमी के अन्दर न कोई बल है, न बुद्धि, न शक्ति है, न ज्ञान। उसके अन्दर बस, मूर्खता है, दुर्बलता है और है अज्ञान। वह इन्हीं को अपना कह सकता है। लेकिन अगर वह भगवान् की शरण में जाय, अगर वह अपने-आपको भागवत आनन्द के सुपुर्द कर दे, तो उसे सब कुछ मिल जाता है, हर चीज मिल जाती है, वह बलवान्, बुद्धिमान् और शक्तिशाली बन जाता है। अपने-आपको पूरी तरह उनके हाथों में सौंप दो और वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

"मेरे इस भौतिक शरीर और अस्तित्व के बारे में प्रश्न मत करो। यह अपने में कोई बहुत ध्यान देने योग्य बात नहीं है।इस पूरे जीवन में जाने-अनजाने मैं वही रही हूँ जो उस प्रभु ने मुझे बनाना चाहा। मैंने वही किया है, जो उस प्रभु ने मुझसे कराना चाहा। बस यही बात ध्यान देने योग्य है ।

-श्री मां

थोड़ी देर बाद का रास्ता

श्रीमातृवाणी (१८९३)

"थोड़ी देर बाद का रास्ता और आगामी कल की सड़क हमें सिर्फ कुछ भी नहीं के महल में ले जाते हैं।"

रास्ते के किनारे, रंग-बिरंगे फूल आंखों को हर्षित करते हैं। छोटे-छोटे पेड़ों पर लाल- लाल बेरियां गांठदार टहनियों पर चमक रही हैं और कहीं दूर देदीप्यमान सूर्य अन्न की पकी हुई बालियों पर सोना चमका रहा है। एक युवा पथिक झूमता-झामता, सवेरे की निर्मल हवा में आनन्द से सांस लेता चला जा रहा है; वह प्रसन्न मालूम होता है, उसे भविष्य की कोई चिन्ता नहीं। वह जिस रास्ते पर चल रहा है वह एक चौराहे पर निकलता है जहाँ से कई रास्ते सभी दिशाओं में बंट जाते हैं।

युवक हर जगह, हर दिशा में, एक-दूसरे को काटते हुए पद चिह्न देखता है। आकाश में सूर्य अधिकाधिक चमक रहा है; पेड़ों पर विहग गा रहे हैं; दिन के अत्यधिक मनोहर होने की पूरी सम्भावना है। बिना सोचे- विचारे पथिक सबसे नजदीक का रास्ता लेता है, बात व्यावहारिक लगती है; क्षण-भर के लिए उसे ख्याल आता है कि कोई और रास्ता भी तो चुना जा सकता था; लेकिन अगर यह रास्ता अन्धी गली निकला तो लौटने के लिए काफी समय है। एक आवाज-सी सुनायी देती है जो उससे कहती है : "लौट चलो, लौट चलो, तुम ठीक रास्ते पर नहीं हो।" लेकिन उसके चारों ओर जो कुछ है वह उसे बहुत अच्छा लगता है, उसे मोहित कर रहा है। अब वह क्या करे? उसे नहीं मालूम।

किसी निश्चय पर पहुंचे बिना वह आगे बढ़ता जाता है; उस क्षण के सुखों में वह खूब मजा ले रहा है। वह उस आवाज को उत्तर देता है: "बस थोड़ी देर बाद, और थोड़ी देर बाद, मैं इसके बारे में सोचूंगा: मेरे पास बहुत समय है।" उसके चारों ओर उगी जंगली घासें उसके कान में फुसफुसाती है : "थोड़ी देर बाद।" थोड़ी देर बाद, हाँ बाद में जब सूर्य अपनी ऊष्मा-भरी किरणों से हवा को गरमाता है तो इस सुरभित वायु में सांस लेना कितना मधुर लगता है! हाँ, बाद में, थोड़ी देर बाद। और पथिक आगे बढ़ता चलता है; रास्ता चौड़ा होता जाता । दूर से आवाजें सुनायी देती है : "तुम कहाँ जा रहे हो? ओ बेचारे मूर्ख, क्या तुम देख नहीं पा रहे कि तुम अपने विनाश की ओर जा रहे हो? तुम अभी छोटे हो; आओ, आओ, हमारी ओर आओ, सुन्दर, शिव और सत्य की ओर आओ आलस्य और दुर्बलता के कारण गलत रास्ते पर न जाओ, वर्तमान को लेकर ही सो न जाओ; भविष्य के प्रति जागो।" – पथिक अप्रिय आवाजों को उत्तर देता है : 'बाद में, बाद में।' फूल उसे देखकर मुस्कुराते हैं और दोहराते हैं: "बाद में। " रास्ता और में चौड़ा होता जाता है। आकाश में सूर्य चोटी तक पहुंच चुका है। दिन प्रकाशमान है । रास्ता सड़क में

बदल जाता है। सड़क सफेद और धूल भरी है, उसके किनारे भोज-वृक्ष खड़े हैं; एक छोटी-सी नदी का कल-कल शब्द सुनायी दे रहा है; लेकिन वह व्यर्थ में चारों ओर खोजता है, उसे इस अनन्त सड़क का कहीं अन्त नहीं दिखायी देता । युवक एक छिपी हुई बेचैनी-सी अनुभव करता है, चिल्लाता है: मैं कहाँ हूँ? मैं कहाँ जा रहा हूँ?... इसकी क्या परवाह! सोचा ही क्यों जाये? कुछ भी क्यों किया जाये? चलो, इस अन्तहीन सड़क पर ही बेमतलब भटका जाये; चलो, चलते चलें। कल सोचेंगे। "

छोटे-छोटे पेड़ गायब हो गये; सड़क के किनारे बलूत लगे हैं। खाई आरम्भ हो रही है जो दोनों ओर खोखला करती जाती हैं। पथिक को थकान नहीं लग रही; वह मानों प्रलाप की अवस्था में आगे घसीटा जा रहा है। खाई और गहरी होती जा रही है; बलूत के पेड़ की जगह चीड़ ने ले ली; सूरज ने ढलना शुरू कर दिया। पथिक चारों ओर चकराया-सा देखता है; उसे खाई में लोटते हुए मानव आकार दिखायी देते हैं, कई चीड़ के पेड़ों से चिपके है तो कुछ सीधी चट्टानों से और कुछ बाहर निकलती जड़ी से उनमें से कुछ वापिस चढ़ आने के लिए भरसक कोशिश कर रहे हैं लेकिन जैसे ही किनारे के पास आते हैं, वे मुंह फेर लेते हैं और मानो जानबूझ कर फिर जा गिरते हैं।

गूंजती हुई आवाजें पथिक से चिल्ला कर कहती हैं : इस इलाके से भाग निकलो; चौराहे की ओर लौट जाओ अभी भी समय है।" युवक ठिठकता है और फिर उत्तर देता है "कल" वह दोनों हाथों से अपना मुंह ढक लेता है ताकि खाई में लोटते शरीरों को न देख सके, और सड़क पर दौड़ पड़ता है, उसमें आगे बढ़ते जाने का अदम्य आवेग है। अब उसे रास्ता मिलने की परवाह नहीं है। माथे पर झुर्रियां और कपड़े अस्त- व्यस्त, वह हताशा में दौड़ा जा रहा है। आखिर, अपने आपको उस मनहूस जगह से दूर मान कर वह आंखें खोलता है : चीड़ के पेड़ खतम हो चुके है; चारों ओर बस धूसर, बंजर, पथरीली जमीन है। सूरज क्षितिज के पीछे जा छिपा है और रात प्रकट हो रही है। सड़क एक अनन्त रेगिस्तान में खो जाती है। पथिक निराश है, लम्बी दौड़ के कारण थक कर चूर हो गया है। वह कहीं रुकना चाहता है पर उसे चलना ही पड़ेगा। उसके चारों ओर खंडहर हैं; उसे दबी, घुटती हुई आवाजें सुनायी देती हैं। उसके पैर कंकालों में लड़खड़ाते हैं, दूर उस ओर कुहरा भयावने आकार ले रहा है काले-काले ढेर कुछ खाके से बना रहे हैं। किसी महाअनिष्ट के आसार दिख रहे हैं पथिक अपने सामने दिखते इस लक्ष्य की ओर चलने की जगह उड़ना शुरू करता है। परन्तु वह हमेशा उससे बच निकलता है। हिंसा भरी, क्रूर चिल्लाहटें उसे आगे का रास्ता दिखलाती है वह इधर-उधर भूत-प्रेतों से भिड़ता जाता है।

आखिर उसे अपने आगे एक बहुत बड़ी इमारत दिखायी देती है, अंधेरी, सुनसान, विषाद-भरी उन महलों में से एक जिनके बारे में लोग - सिहरन के साथ कहते है "यह भुतहा महल है।" लेकिन युवक उस जगह के विषाद के बारे में नहीं सोचता। उन बड़ी काली दीवारों, धूल भरी जमीन और इन भयंकर, भीमकाय मीनारों का उस पर कोई असर नहीं होता। इन्हें देख कर उसके रोंगटे नहीं खड़े होते वह बस सोचता है कि वह अपने लक्ष्य पर आ पहुंचा। वह

सारी थकान, सारी उदासी और विषण्णता को भूल जाता है। महल की ओर बढ़ते हुए वह एक दीवार से छू जाता है और दीवार तुरन्त ढह जाती है; उसके चारों ओर सब कुछ, मीनारें, परकोटे, प्राचीर, सब-के-सब धूल में डूब जाते हैं जो धूल जमीन को ढके हुए थी उस पर परतें और बढ़ जाती हैं।

उल्लू, कौए और चिमगादड़ कर्कश आवाजें करते हुए बाहर निकल आते हैं और बेचारे पथिक के सिर के चारों ओर मंडराने लगते है। वह सम्मोहित सा, हताश और थक कर चूर अपने स्थान से जकड़ गया है; अब जरा सी गति करना भी असम्भव है। अचानक, माना इन बीभत्स, दिल दहलाने वाली चीजों की कमी पूरी करने के लिए उसे अपने आगे भयंकर भूत खड़े दिखायी देते हैं जिनके नाम है: 'बरबादी', 'निराशा', 'जीवन से घृणा'। और इन खंडहरों के बीच उसे एक झांकी मिलती है। 'आत्म-हत्या' की, जो अथाह खाई के ऊपर खड़ी है - रक्तहीन, उदास और खिन्न। ये सभी सांघातिक भूत उससे चारों ओर से चिपटे हैं और उसे मुंह बाए खड़े जोखिम की ओर ढकेलते हैं। अभागा आदमी इन दुर्धर्ष शक्तियों का सामना करना चाहता है, वह पीछे हटना चाहता है, बच निकलना चाहता है, जो अदृश्य भुजाएं उसे अपने में समेटे हुए हैं, जकड़े हुए हैं वह उनमें से निकल भागने की कोशिश करता है। लेकिन अब बहुत देर हो चुकी है। वह उस घातक खाई की ओर बढ़ा जा रहा है। वह उससे आकर्षित, सम्मोहित है। वह पुकारता है, पर कोई आवाज उसे जवाब नहीं देती। वह भुतहा आकारों को पकड़ता है, लेकिन हर चीज उसके नीच ढहती जाती है। निर्जीव आंखों से वह अपने चारों ओर के शून्य का अवलोकन करता है, वह पुकारता है, याचना करता है, अन्ततः उसके कानों में गूंज उठती है 'अशुभ' की बीभत्स हंसी ।

पथिक अब खाई के किनारे पर है। उसके सब प्रयास व्यर्थ हैं। एडी से चोटी का पूरा जोर लगा कर वह गिर पड़ता है... अपने बिस्तर से। एक युवा विद्यार्थी को अगले दिन के लिए एक लम्बा निबन्ध तैयार करना था। सारे दिन के काम से वह कुछ थक गया था, उसने घर लौट कर अपने-आपसे कहा: "मैं बाद में काम कर लूंगा।" शीघ्र ही उसने सोचा कि अगर वह जरा जल्दी सो ले तो सवेरे जल्दी उठ कर अपना काम पूरा कर लेगा। "चलो, सो जायें," उसने अपने आपसे कहा । कल ज्यादा अच्छा काम कर सकूंगा, रात बहुत अच्छी सलाहकार होती है।" उसने आशा न की थी कि उसकी बात इतनी सच्ची निकलेगी। उसकी नींद में उस दुःस्वप्न ने गड़बड़ कर डाली जिसका हम अभी वर्णन कर आये है। खाट से गिर कर वह चौंक पड़ा और अपने स्वप्न के बारे में सोचते हुए बोला : "सारी चीज कितनी सरल है : यह रास्ता था, 'थोड़ी देर बाद का रास्ता, सड़क है आगामी 'कल' की सड़क और वह विशाल भवन था... 'कुछ भी नहीं' का महल।" अपनी होशियारी पर फूला न समाया हुआ, युवक काम पर बैठ गया और उसने अपने-आप से दृढ़ प्रतिज्ञा की कि जो वह आज कर सकता है उसे कल पर कभी न टालेगा।

माँ और उनके कार्य का स्वरूप

- नलिनी कान्त गुप्त

मुझे तुमसे माँ के विषय में कुछ कहना है - उनके जीवन के, उनके कार्यकलापों के एक अंश के विषय में। जैसा कि तुम सब जानते हो कि माँ का जन्म फ्रांस में, पैरिस में हुआ था और अपने जीवन का प्रथम भाग उन्होंने वहाँ बिताया था। अतः स्वाभाविक था कि उनसे अक्सर कहा जाता था कि वे फ्रेंच थी, वे योरोपियन थीं। किन्तु वे इसका सदैव विरोध करती थीं, "मैं फ्रेंच नहीं हूँ, मैं योरोपियन नहीं हूँ।" वास्तव में उनका परिवार मिस्र से आया था। उनके माता-पिता उनके जन्म से केवल एक वर्ष पूर्व ही पैरिस गये थे। और मिस्र में उनका परिवार एक बहुत पुराने घराने का - शायद एक राजघराने का अंग था - फ़ेराओं का। अतः वे रक्त से फ्रेंच या योरोपियन नहीं हैं, यद्यपि उनका लालन-पालन इसी प्रकार हुआ था।

यदि देखा जाये तो वे 'मध्य-पूर्व' की थीं, उस पृथ्वी खण्ड की जो योरोप के पूर्वी हिस्से और एशिया के पश्चिमी हिस्से को जोड़ता है। इसका अर्थ है योरोप और एशिया का संगम, दोनों का सामंजस्य और यह माँ के चरित्र और उनकी नियति को प्रतिबिंबित करता है। जैसा मैंने कहा कि उन्होंने अपने जीवन का आरंभिक भाग फ्रांस में बिताया, किन्तु फ्रांस ही क्यों? इस चुनाव में एक अर्थ निहित है। अब हम उनके जीवन का अर्थ, मूलभूत अर्थ, उनका मिशन और उनका कार्य जानते हैं। वे एक नवीन ज्योति लाने के लिए आयी थीं। वे, एक पुराना संसार अपनी पुरानी प्रकृति, पुरानी संस्कृति के साथ नहीं, वरन् एक नवीन संसार, एक नवीन मानवजाति चाहती थीं। वे अपने साथ वह नवीन ज्योति लायी जो मनुष्य और संसार की पुनः सृष्टि करेगी, उसे पुनः आकार देगी।

नवीन मानव और फ्रांस के बीच में क्या सम्बन्ध था? नवीन ज्योति के आने और अभिव्यक्त होने से पहले तुम्हें उसे मन में स्वीकार करना होगा; इसका अर्थ है कि तुम्हें देखना और पहचानना होगा कि यह एक नयी ज्योति है और उसका आह्वान करना होगा। और मनुष्य में मन प्रथम और सबसे ऊंचा ग्रहणकर्ता है। तुम धम्मपद की प्रथम पंक्ति, जिसमें बुद्ध की शिक्षा का सारांश है, याद करो, मनोपुब्बङ्गमा धम्मा - मन मनुष्य के सभी कार्यों में सर्वोत्तम है। मन सबका अतिक्रमण करता है, सबका आलिंगन करता है। अब अगर ज्योति नीचे आती है और तुम्हारे अन्दर प्रवेश करती है, वह सबसे पहले तुम्हारे सिर का स्पर्श करती है, जिसका अर्थ है तुम्हारे मन का : तुम उसे देखते हो और उसके विषय में सचेतन होते हो। आज फ्रांस मानवता के सर्वश्रेष्ठ इसी मन का, इसकी संस्कृति और सभ्यता के प्रस्फुटन का प्रतिनिधि है। वे इसलिए वहाँ पैदा हुई थीं ताकि मानवजाति का उच्चतम मन उनके माध्यम से ज्योति को ग्रहण कर सके। उन्होंने वहाँ अपना जीवन उस समय के सर्वाधिक विशिष्ट जनों, वैज्ञानिकों, कलाकारों, कवियों, जो सभी सबसे सुसंस्कृत और सबसे अधिक परिष्कृत स्तर के थे, उनके सम्पर्क में व्यतीत किया। वे वहाँ इसलिए थीं

ताकि अपने संसर्ग द्वारा वे उनके अन्दर नवीन ज्योति ला सकें। इसी उद्देश्य से वे एक संस्था, एक दल की सदस्या बन गयीं और उसे नाम दिया गया, ब्रह्माण्डीय (कॉस्मिक)। ब्रह्माण्डीय का अर्थ है समस्त संसार का दूसरे शब्दों में, वे जो कर रही थीं, व जो प्रदान कर रही थीं, समस्त विश्व के लिए था, पूर्व और पश्चिम के सभी मनुष्यों के लिए था, सबके लिए। इसका अर्थ यह है कि विश्व का आलिंगन करती हुई एक वैश्व चेतना। वे एक नयी प्रकार के मानसिक विश्व की सृष्टि कर रही थीं, उच्चतम मानसिक विकास के द्वारा, एक और अधिक प्रशस्ततर मन तक पहुँचने के लिए—वैयक्तिक अहंकारी मन की पहुँच से दूर।

जैसा कि मैंने कहा है, क्योंकि मन, सिर मनुष्य का सर्वोच्च भाग है, उसके लिए नवीन ज्योति को अपने सिर के माध्यम से पहले ग्रहण करना अधिक आसान है। इस सम्बन्ध में तुम श्री अरविन्द की कविता 'स्वर्णिम ज्योति' को याद करो कि कैसे वह ऊपर से आती है और सबसे पहले सिर में, मस्तिष्क में प्रवेश करती है। वह तुम्हारे विचारों को ज्योतित कर देती है, तुम्हारी समझ को विकसित करती है, प्रशस्त, गहरी और तीव्र करती है। किन्तु समझ पर्याप्त नहीं है, तुम्हें इससे प्रेम करना होगा, केवल तभी तुम इसे अधिकृत करना आरम्भ कर सकते हो। तब 'स्वर्णिम ज्योति' तुम्हारे हृदय में प्रवेश करती है। तब वह और नीचे, एक अधिक ठोस तथा सक्रिय अभिव्यक्ति की ओर बढ़ती है; वह प्राणिक क्षेत्र में प्रवेश करती है। अन्त में 'स्वर्णिम ज्योति' तुम्हारे पाँवों में प्रवेश करती है, अर्थात्, तुम्हारे दैहिक अंगों को अधिकृत कर लेती है; वह उपादान में ठोस हो जाती है और उपस्थित हो जाती है जैसे तुम्हारे शरीर में ही घनीभूत हो जाती है। वह सुन्दर शरीर गढ़ती है। माँ ऐसे मानवता के शीशे में स्वर्णिम ज्योति लाती हैं, उसकी चेतना की सबसे ऊँची सीढ़ी पर और दिव्य जीवन में दीक्षा का यह कार्य उन्होंने फ्रांस में आरम्भ किया था।

अपने कार्य के अगले स्तर के लिए वे जापान गयीं। जापान में सुदूर पूर्व में आयीं। उन्होंने वहाँ पाँच वर्ष, पाँच लम्बे वर्ष, व्यतीत किये। जापान ध्यान की ज़ेन प्रणाली की भूमि है। अर्थात् आन्तरिक चेतना में प्रवेश करने का एक विशेष पथ, एक तार्किक मानसिक चेतना नहीं, वरन् एक गुह्य और अधिक संवेदनशील क्षेत्र में एक आन्तर दृष्टिपात्। जापानी, एक राष्ट्र के रूप में एक बहुत संवेदनशील प्राण-शक्ति, एक कलात्मक प्राण-शक्ति के प्रतिनिधि हैं, जो शक्ति जीवन में, जीने के तरीके में व्यवस्था और सौन्दर्य खोजती है। 'स्वर्णिम ज्योति' को अभिव्यक्त होने के लिए और भौतिक जगत् में अपनी क्रीड़ा के लिए, मानों, उसकी देह अधिकृत करने के लिए, इस प्रकार की प्राण-शक्ति प्राप्त करना और उसे धारण करना आवश्यक है। जापानी पहलवान अपनी प्राणिक शक्ति के लिए, अपनी स्व- नियंत्रित शक्ति के लिए जाने जाते हैं। (उनमें से लगभग सभी की, जैसा तुम चित्रों में देखते हो, एक बड़ी तोंद होती है, और उन्हें विश्वास है कि तोंद प्राणिक क्षमता का भण्डार गृह है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं तुम्हें तोंद बढ़ाने की सलाह देता हूँ, कदापि नहीं।) लेकिन शारीरिक कार्यकलापों में भी शारीरिक शक्ति से अधिक प्राणिक क्षमता आवश्यक है। हाँ, जापानियों के पास एक प्राण-शक्ति होती है, जो बलशाली, नियंत्रित, सुव्यवस्थित और संवेदनशील है। तुम्हें माँ की प्रार्थना और ध्यान में से एक-दो प्रार्थनाएँ याद होंगी। वे चेरी के फूलों की बातें करती

हैं, जो जापान के कलात्मक संवेदन का, सौन्दर्य के लिए अनुभूति का एक पवित्र हुए संवेदन-बोध का प्रतीक है; एक रुक्ष और अपरिष्कृत और हिंसक (निम्न) प्राण नहीं, वरन् एक सूक्ष्म, एक प्रिय अन्तरंगता की भावना और एक व्यवस्थित प्रसन्नता; यही है चेरी-पुष्प का अर्थ माँ ने अपने एक अन्तर्दर्शन का वर्णन भी किया है, यह एक सुन्दर चित्र था, एक जापानी माँ और उसका बच्चा; यह एक नवजात शिशु की प्रतिमा थी, जो मानवता में उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार चेरी-पुष्पों की धरती पर, समस्त विश्व के लिए, एक नये संसार का, एक नये प्राणिक जगत् का प्रवेश कराया जाता है।

माँ सर्जन चेतना हैं; वे जहाँ भी होती हैं, उन्हें जहाँ जाने को पुकारा जाता है, उनकी उपस्थिति मात्र सर्जन की ओर अग्रसर होती है तथा समय और स्थान की आवश्यकता के अनुसार एक नये संसार का एवं सत्ता और चेतना के एक नये आयाम का सृजन करती हैं और वे एक पूरे संसार की सृष्टि करती हैं, और उनकी सृष्टि स्थायी होती है क्योंकि वह मानव के विकास में एक नवीन निष्पादन होता है। इसे संसिद्ध करने के लिए सुव्यवस्थित, सशक्त, सुनियोजित प्राणिक जगत्, जिसके विषय में हम बता रहे थे, को सहारा देने और अभिव्यक्त करने के लिए एक सक्षम शरीर की आवश्यकता है। स्वर्णिम ज्योति को पाँवों में आना होगा। यहाँ पर वे यही कार्य कर रही थीं और इसी के लिए उन्होंने आश्रम का निर्माण किया। तुम सब जानते हो कि माँ शरीर और इन्द्रियों को, स्वर्णिम ज्योति को ग्रहण करने के लिए तैयार करने के हेतु शारीरिक प्रशिक्षण पर विशेष बल देती थीं। वे सदैव कहती थीं कि शारीरिक शिक्षा हमें नवीन चेतना, नवीन ज्योति के लिए आधार देती है। हमें एक बलवान् शरीर, एक सुन्दर शरीर एक सहिष्णु शरीर चाहिये; क्योंकि नयी ज्योति शक्तिशाली है, वह केवल ज्योति नहीं है, वह एक शक्ति है; व्यक्ति को उसे सहन करने और उसका आदेश मानने के लिए तैयार होना होगा। वास्तव में, वे यहाँ इस दिव्य ज्योति को एक आकार, एक ठोस और भौतिक रूप, एक पार्थिव शरीर देने आयी थीं।

सुन्दर शरीर अपने में एक अन्त, एक परिपूर्ति नहीं है, उसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को एक सुन्दर प्राण चाहिये। केवल यही नहीं : शरीर और प्राण में परिपूर्णता के लिए व्यक्ति को एक सुन्दर मन उपलब्ध होना चाहिये। माँ ने हमारे लिए जिस शारीरिक शिक्षा का प्रबन्ध किया है वह हमें सुन्दर शरीर के लिए तैयार करने के लिए है। यह स्कूल जो उन्होंने व्यवस्थित किया है मन को परिष्कृत करने के लिए है। मन के परिष्कार का अर्थ यह नहीं कि उसमें विविध विषयों के बारे में सूचना मात्र दी जाये, पुस्तकों का अध्ययन किया जाये, उसका अर्थ मन का, मन के उपादान का, पवित्रीकरण, परिष्करण तथा ज्योति की खोज और उसे पहचानने के लिए चेतना का एक उन्नयन भी है।

मैंने कहा है कि तुम्हें नवीन ज्योति को पहले सिर के माध्यम से ग्रहण करना है, किन्तु हृदय के माध्यम से भी, और तब तुम्हारी। प्रगतिशील प्राणिक ऊर्जा के माध्यम से तुम्हे ज्योति को न केवल देखना और पहचानना है, वरन उससे प्रेम करना है उसके प्रति निष्ठावान् होना है। और यहाँ आता है माँ का हमारे लिए केन्द्रीय कार्य, उनका

विशेष उपहार, उनकी कृपा। जब तुम किसी वस्तु को प्यार करते हो, कहा जाता है तुम हृदय के माध्यम से प्रेम करते हो, किन्तु प्रेम विभिन्न प्रकार का होता है और हृदय के अन्दर भी एक हृदय है। सच्चा प्रेम, प्रेम जो दिव्य है, वह इस आन्तरिक हृदय में है, जो तुम्हारी अन्तरात्मा है, तुम्हारे अन्दर की यथार्थ सत्ता या व्यक्तिः और अन्तरात्मा का बाहर आना, सामने आना, यहाँ पर माँ की विशेष कृपा है, तुम सबको, तुममें से प्रत्येक को उनका उपहार। उन्होंने तुम्हें तुम्हारी अन्तरात्मा उपलब्ध करायी है। मैंने प्रायः कहा है कि हममें से प्रत्येक जो यहाँ पर है उसके लिए यह एक विशेषाधिकार है, तुममें से प्रत्येक के लिए, इस सत्ता को वहन करना, इस आन्तरिक सत्ता को, इस अन्तरंग व्यक्ति को, दिव्य शिशु को जो तुम हो। यही है जो तुम्हारे दिव्य व्यक्तित्व का निर्माण कर रहा है, यही है जो तुम्हें अन्त में एक सुन्दर मन, एक सुन्दर प्राण, एक सुन्दर शरीर - वह सब जिसकी तुम्हें अपने जीवन में आवश्यकता है, वह सब जो तुम्हे यहाँ इस संसार में जो कुछ भी पूर्ण और अनिन्द्य है, प्रदान करेगा। तुम्हें याद होगी, तुममें से बहुतेरों को, सावित्री की प्रसिद्ध पंक्ति, जिसे तुमने माँ के अधरों से सुना है :

"स्वर्ण मीनार बन गयी है. अग्निशिखा-शिशु का जन्म हो गया है।"

उन्होंने नव जीवन की यह मीनार बना दी है और वह शिशु यहाँ पर है, स्वर्णिम शिशु। यह स्वर्णिम शिशु तुममें से प्रत्येक के अन्दर है। तुम्हें उसे ढूँढ़ना होगा, पहचानना होगा, वही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य है; पृथ्वी पर तुम जो करना और होना चाहते हो, वह उसका ध्येय और उसकी परिपूर्णता है। तुममें से कुछ ने अवश्य ही अपने अन्दर इस शिशु की उपस्थिति का अनुभव किया होगा। कुछ ने उसे अपने अन्दर दिव्य शिशु के रूप में देखा होगा। ये वस्तुएँ जिन्हें ईश्वरीय भेंट कहा जाता है - सामान्यतः सपनों में आती हैं। मैं कम-से-कम कुछ को जानता हूँ, जिन्होंने इसे देखा है और मुझे अपने चमत्कारी अनुभव के विषय में बताया है। यह प्रत्येक के लिए एक सम्भावना है और अगर तुम उसे देख पाते हो, तुम्हें उसे पहचानना होगा, समस्त प्रेम और स्नेह से पकड़ना और ग्रहण करना होगा। माँ अभी भी हमारे मध्य में जीवित और कार्यरत हैं और उनकी उपस्थिति अब भी यहाँ है, यहाँ तक कि ठोस रूप में है, क्योंकि तुममें से प्रत्येक के अन्दर दिव्य शिशु है। मैं एक प्रार्थना के साथ समाप्त करता हूँ, एक प्रार्थना जो मैंने कुछ समय पहले माँ से की थी; यह हमारी क्रीड़ाभूमि के छोटे बच्चों की ओर से है:

"मधुर माँ, तुम्हारी क्रीड़ाभूमि के बच्चे देवदूत हैं; वे दिव्य या देवी बने नहीं हैं, वरन् वे देवदूत हैं, पार्थिव देवदूत। उन्हें हमेशा अपनी आँखों के नीचे रखिये, उन्हें अपनी प्रेममयी चेतना की गोद में झुलाइये।'

तुम्हारी ओर से मैंने माँ से यही प्रार्थना की थी, और मुझे विश्वास है कि माँ ने प्रत्युत्तर में "हाँ" कहा।

नवंबर १९७३ में प्रकाशित हुआ

श्रीमाँ का पावन स्मरण

- सुरेश चंद्र त्यागी (चेतना के शिखर)

किसी जिज्ञासु ने श्रीमाँ के जन्म दिवस (21 फरवरी, 1968) के अवसर पर उनके संस्मरण जानने, सुनने की इच्छा व्यक्त की होगी। श्रीमाँ ने कहा था, "मेरे संस्मरण संक्षिप्त होंगे। मैं श्रीअरविन्द से भेंट करने के लिए भारत आई। मैं श्री अरविन्द के साथ रहने के लिए भारत में रही। जब श्री अरविन्द ने अपना शरीर त्याग दिया, तब मैं यहाँ रहती रही जिससे उनका कार्य कर सकूं। उनका कार्य है सत्य की सेवा और मानवजाति के प्रबोधन द्वारा धरती पर भगवत प्रेम के शासन को शीघ्र ले आना।"

श्री अरविन्द का यह महत्व कार्य ही उनसे और श्रीमाँ से जुड़े हुए व्यक्तियों और संगठनों के लिए दिशाबोधक है। 1930-31 में किसी समय श्रीमाँ ने श्री अरविन्द के कार्य का खुलासा किया था। उन्होंने किसी प्रश्न के उत्तर में कहा था, "श्री अरविन्द का कार्य है धरती का अद्वितीय रूपान्तरण। मन के उपर चेतना सत्ता के विविध स्तर हैं जिसमें वास्तविक दिव्य जगत् वह है जिसे श्री अरविन्द ने अतिमानस कहा है- सत्य का जगत्। लेकिन बीच में वह जिससे उन्होंने अधिमानस (over mind) के रूप में पहचाना है- कॉस्मिक देवों का जगत्। यह अधिमानस ही है जिसने आज तक हमारे जगत् का संचालन किया है : यही उच्चतम है जिसे मनुष्य ज्योतिर्मय चेतना में प्राप्त करने में समर्थ हुआ है।..... यह सत्य का वास्तविक आवास नहीं है।.... वास्तविक भगवान् के प्रकट न होने और धरती की प्रकृति को रूपान्तरित न करने का ठीक यही कारण है कि अधिमानस को अतिमानस समझ लिया गया है। कॉस्मिक देव पूर्णरूपेण सत्य चेतना में नहीं रहते, वे केवल उसके सम्पर्क में हैं और उनमें प्रत्येक उसकी महिमा के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है।.....

इसलिए अधिमानस में मानवजाति को दिव्य प्रकृति में रूपान्तरित करने की शक्ति नहीं है, न हो सकती है। उसके लिए अतिमानस ही अकेला समर्थ प्रतिनिधि है। वस्तुत: भूतकाल में जीवन को आध्यात्मिक बनाने के प्रयासों से हमारे योग को अलग करने वाली चीज यह है कि हम यह जानते हैं कि अधिमानस की भव्यताएं उच्चतम सत्य नहीं है अपितु केवल मन और सच्चे भगवान् के बीच का एक मध्यवर्ती चरण है।"

श्री अरविन्द के और श्री माँ के भी कार्य को समझने और उसकी शीघ्र सिद्धि की दिशा में अग्रसर होने के लिए हमारा कर्तव्य क्या है? यही वह प्रश्न है जिसका उत्तर हमें खोजना है। यह उत्तर बहसों और तर्कों के निष्कर्ष ढूँढ़ने से नहीं मिल सकता। यह अपने अन्तर्जगत् की, चेतना के उच्चतर स्तरों की साहस-यात्रा है। सच तो यह है कि आध्यात्मिक यात्रा में नये रास्तों की खोज के लिए सर्वाधिक सहायता उनकी कृपा है जिन्हें हम 'श्रीमाँ' के रूप में पहचानते हैं। उनकी वाणी है अज्ञान और अहंकार के अधंकार को बेधती हुई स्नेह भरी रश्मि रेखा।

जीवन को उसकी समग्रता में देखने वाली श्री अरविन्द और श्रीमाँ की दृष्टि किसी प्रश्न को अनसुलझा नहीं छोड़ती, किसी जिज्ञासा को अशांत नहीं रहने देती। सौन्दर्यशास्त्रीय चिन्तन की भावी दिशा के सूत्र इसी में मिलते हैं। संगीत और चित्रकला के क्षेत्रों में श्रीमाँ की गहरी पैठ थी। उनकी 'प्रार्थनाएं और ध्यान' लेखन-कला का अनोखा और अद्वितीय आदर्श है। श्रीमाँ की वाणी में गंगा में अवगाहन करते समय उनकी यह घोषणा मन में रखनी चाहिए- "मेरी बातों को एक शिक्षा के रूप में मत लो। ये शब्द क्रियाशील शक्ति हैं जो एक निश्चित प्रयोजन से उच्चारित हैं और इन्हें उस प्रयोजन से अलग कर दिया जाये तो वे अपनी सच्ची शक्ति खो देते हैं।"

वस्तुत: श्रीमाँ की वाणी का मनन उनका स्मरण करने का सर्वोत्तम साधन है। कवि सुमित्रानन्दन पंत ने एक स्थान पर लिखा है कि " श्रमाता जी पर निश्छल आस्था ही वह स्वर्णिम सोपान है जिससे साधन अपने वर्तमान प्राण मन जीवन की सीमाएं अतिक्रम कर उत्तरोत्तर विकास के अंतरिक्षों में विचरण करने में सफल होता है। जिस प्रकार हिमालय के शिखरों का अनुभव मनुष्य नीचे के धरातल पर खड़ा रहकर नहीं कर सकता और शिखर पर आरोहण करने के बाद ही वह धरती के जीवन को व्यापक दृष्टि से आरपार देखने में सक्षम होता है वैसे ही वर्तमान मन के धरातल से, जो सत्य को खंड-खड़ करके ही समग्र का आंशिक बोध प्राप्त करता है, पूर्ण सत्य का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना भी संभव नहीं, उसके लिए मानव मन को अंतर्विकास के सोपानों पर आरोहण कर सत्य का साक्षात्कार करना होता है।

श्री अरविन्द का अतिमानसिक सत्य वही दिव्य ऊर्ध्वशिखर है जिसे प्राप्त कर मनुष्य विधान का उद्देश्य तथा उसकी विकासशील प्रणाली का सुव्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करता है श्रीमाँ आज विश्व चेतना के भीतर पैठकर वही दिव्य रूपान्तर का कार्य कर रही हैं। वे सूक्ष्म में नवीन देह धारण कर अब स्थूल विश्व की क्रिया प्रणाली को अतिमानसिक सृजन -प्रणाली में परिणत कर रही हैं। श्री अरविन्द के बिना उनका अस्तित्व नहीं, उनके बिना श्री अरविन्द की चेतना विश्व में अभिव्यक्त नहीं हो सकती।"

"अदिति" के पुनर्प्रकाशन पर उन पाठकों ने हर्ष व्यक्त किया है जिन्होंने हिन्दी भाषी क्षेत्रों में 'अदिति' के प्रभाव को देखा था और इसके माध्यम से श्रीअरविन्द की विचारधारा के सम्पर्क में आये थे। 1943 में दिल्ली से प्रारंभ 'अदिति' बाद में वर्षों तक पांडिचेरी से निकलती रही थी। 'अदिति' के अतिरिक्त जिन अन्य हिन्दी पत्रिकाओं ने श्री अरविन्द के आलोक में आध्यात्मिक जागृति का लक्ष्य रखा और कुछ दिनों तक चलकर बंद हो गई , उनका स्मरण भी किया जाना चाहिए।

श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द की आध्यात्मिक शिक्षा तथा भावधारा का अनुसरण करने वाली वार्षिक पत्रिका 'अर्चना' का प्रथम अंक 15 अगस्त 1947 को निकला था। पांडिचेरी से प्रकाशित होने वाली 'अर्चना' के संपादक श्री चन्द्रदीप थे। इसके कई महत्वपूर्ण अंक निकले थे जो आज भी पठनीय हैं।

'भारत माता' का प्रथम अंक अप्रैल 1950 में निकला था। बम्बई से प्रकाशित इस पत्रिका के सम्पादक श्री केशव देव पोद्दार थे और संयुक्त सम्पादक थे श्री वीरेन्द्र कुमार जैन।

'मां' पत्रिका कलकत्ता से प्रकाशित हुई थी और इसके सम्पादक थे श्री श्याम सुन्दर झुनझुनवाला । इसी तरह श्री मातृ केन्द्र गाजियाबाद से त्रैमासिक 'माता' का प्रकाशन शुरू हुआ था जिसके पीछे श्री मोहन स्वामी की प्रेरणा थी। पांडिचेरी से श्री रवीन्द्र के सम्पादन में निकल रही 'पुरोधा' और 'अग्निशिखा' से पाठकगण परिचित ही हैं। श्रीअरविन्द सोसाइटी उ.प्र.की ओर से 'अदिति' के प्रकाशन का उद्देश्य हिन्दी भाषी जिज्ञासुओं तक श्री अरविन्द एंव श्रीमाँ की वाणी को पहुंचाना भर है। इस वाणी में अन्तर्निहित शक्ति हम सब के लिए पथ प्रदर्शक हों, यह मंगलकामना है।

माताजी का प्रेम नई अंतर्दृष्टि एवं आध्यात्मिक ग्रहण-शक्ति देता है। माता जी के प्रकाश की ओर खुलना, उनके प्रेम, बल एवं कृपा की ओर उन्मुख होना, चाहे वह भौतिक रूप से हमारे निकट हों या नहीं, जीवन का सर्वोत्तम उपहार है ।

-श्री अरविंद

माताजी – प्रसंगवश अपने बारे में

- दिव्य आगमन से

... मुझे याद आता है जब मैंने अपनी माँ को पहली बार झूठ बोलते सुना तो मानो मैं आसमान से गिर पड़ी। उन्होंने नौकर से कहा कि “कह दो मैं यहाँ नहीं हूँ; “ जबकि वे वहीं पर थीं। मैं कुछ भी नहीं समझ पा रही थी। इससे पहले कभी मुझे नहीं बतलाया गया कि झूठ क्या होता है। लेकिन अन्तरात्मा तो सदैव विद्यमान है और वह सब जानता है। हमारे यहाँ एक लकड़ी की दीवार आलमारी थी जहाँ दवाइयाँ रखी रहती थीं। एक दिन मेरे भाई ने स्टूल पर चढ़कर उस आलमारी से एक पैकेट उतार लेने को कहा। जब मैंने उसे पैकेट दे दिया तो उसने मुझसे कहा कि मैं यह बात किसी को न बतलाऊँ कि पैकेट किसने लिया है। मैंने उसकी ओर देखा और अपने हृदय में भयंकर बैचेनी महसूस की। यह बात मैंने किसी को नहीं बतलायी लेकिन वर्षों तक बैचेनी बनी रही और तब मैं अपने आपसे कहा करती थी, “यही झूठ होना चाहिए”.. This must be falsehood.

* ***

... मैं स्वभाव से बहुत संवेदनशील थी। जब किसी बात पर मतभेद होने पर मेरे साथी मुझे बुराभला कहते तो मुझे बड़ी पीड़ा महसूस होती। खास तौर पर उनके कहने पर जिनके साथ मैं सदा ही सहानुभूति एवम् मुलामियत से व्यवहार करती थी। जैसी कि मेरी आदत थी कि हर कठिनाई का कुछ-न-कुछ हल खोजने का प्रयास करना... यहाँ भी मैंने इस बात का एक हल खोज निकाला। ऐसे मतभेद के जब अवसर आते मैं स्वयं से कहनी, “मैं क्यों दुख मानूं और तकलीफ पाऊँ? यदि वे जो कुछ कह रहे हैं सही है तो मुझे स्वयं को सुधार लेना चाहिए और यदि वे गलत हैं तो मैं क्यों चिता करूं”। यह उनका काम है कि वे अपनी गलती के लिए खेद प्रकट करें। दोनों ही स्थितियों में सबसे उत्तम और अनुकूल बात यही होगी कि मैं शांत, दृढ़ और अचंचल बनी रहूं।” यह सबक जो उस समय मैं अपने को सीखाती थी वैसी परिस्थिति में हर किसी के लिए प्रभावकारी रहेगा।

* ***

पेरिस में एक लेडी थी जो एक प्रसिद्ध बौद्ध थी। उनका नाम मंडल डेविड नौल था। मैं रोज उनसे मिला करती थी और हम लोग आपस में गहन विषयों की चर्चा किया करते थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा, “तुम्हें कुछ विशेष कार्य करना है, इस विषय में बार-बार नहीं सोचना चाहिए। यह कर्म के प्रति हमारी आसक्ति का द्योतक है। जब तक तुम्हारे अन्दर कुछ करने की चाह विद्यमान है तो यह इस बात का संकेत है कि तुम अभी तक संसार से बंधी हुई हो और उससे आबद्ध हो “ मैंने उत्तर दिया, “नहीं, मेरे विचार से इससे ज्यादा आसान यह सोचना और कल्पना करना

है कि वह सभी कुछ जो हम करना चाहते हैं वह पहले भी किया जा चुका है, भविष्य में भी किया जायगा और आज भी किया जा रहा है। तब हम तुरंत समझ जायेंगे कि हमारा कार्य शाश्वत काल को अखंडता में एक सेकण्ड के समान है, एक श्वास भरने जैसा है और हम उस कर्म से आसक्त नहीं हो सकेंगे। उस समय मैं गीता के विषय में कुछ नहीं जानती थी और न गीता की इस अमर सीख से परिचित थी कि 'कर्म के फल से उदासीन रहो। पर मैंने अपने तरीके से इस सीख को व्यक्त कर दिया था।

* ***

विश्वास हमारे जीवन में बहुत महत्व रखता है। जब कोई वस्तु हम अपने महान गुरु या शुभेच्छु द्वारा दी जाती है तो उस वस्तु में एक बल, एक प्रेरणा तथा सुरक्षा होती है और उसमें हमारा विश्वास प्रगति की ओर ले जाता है। कभी-कभी परम्परागत अंधविश्वास भी हमें प्रेरणा देने में सहायक होते हैं। बहुत पहले लोग यह मानते थे कि छेदवाला सिक्का किसी को मिल जाए तो बड़ा भाग्यवान साबित होता है। एक बार एक गरीब क्लर्क को यह छेदवाला सिक्का पड़ा मिल गया और उसके मन में अपने खुशहाल होने का प्रबल विश्वास जागा। वास्तव में वह कुछ समय पश्चात् सम्पन्न व सफल होता गया। लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। हर सुबह जब वह अपना कोट पहनता तो टटोलकर देख लेता कि सिक्का उसकी जेब में है। एक दिन सुबह नाश्ते के समय उसने अपनी पत्नी से कोट लाने को कहा क्योंकि आज वह उस सिक्के को हाथ में लेकर पुनः देखना चाहता था। पत्नी ने उसे फुसलाने की कोशिश की। परन्तु उसने उस सिक्के को कोट की जेब से निकालना चाहा। वह एकदम बौखला गया क्योंकि वह छेदवाला सिक्का नहीं था। पत्नी ने बताया कि जब वह एक दिन खिड़की से बाहर हाथ निकालकर कोट झाड़ रही थी कि तो वह सिक्का उछलकर सड़क पर जा गिरा। वह उसे ढूंढने भागी पर शायद किसी ने उसे उठा लिया था। तब उसने एक दूसरा सिक्का उस कोट की जेब में रख दिया था। तो तुमने देखा वह सिक्का नहीं था उसमें जागा आत्मविश्वास था जिसने उसे प्रगति दिलवाई। तुम भी विश्वास और प्रेरणा के द्वारा सदैव प्रगति कर सकते हो।

* ***

स्वतन्त्रता ।....... मुझे याद है किसी के इस शब्द के प्रयोग करने पर एक वृद्ध गुप्त विद्या विशारद ने उसे एक सुन्दर उत्तर दिया था। उस व्यक्ति ने कहा, "मैं स्वतन्त्र होना चाहता हूँ। मैं स्वतन्त्र स्वभाव वाला हूँ और तभी मेरा अस्तित्व है जब मैं स्वतन्त्र हूँ ।" उन वृद्ध ने उत्तर दिया, "इसके मायने यह हुआ कि कोई तुम्हें प्यार नहीं करेगा। क्योंकि यदि कोई प्यार करता है तो तुरन्त तुम उस प्यार पर निर्भर हो जाते हो।"

यह एक सुन्दर उत्तर है क्योंकि वास्तव में प्रेम ही एकता की ओर ले जाता है। यह एकता ही है जो स्वतन्त्रता की सही अभिव्यक्ति है। जो लोग स्वतन्त्रता के नाम पर उसका दावा करते हैं वे पूरी तरह सच्ची स्वतन्त्रता से अपनी पीठ मोड़ लेते हैं क्योंकि वे प्रेम को नकारते हैं।

* ***

……आध्यात्मिक सत्य की महानता संख्या पर निर्भर नहीं है। मैं एक नए धर्म के मुखिया को जानती थी और उन्हें एक बार कहते हुए सुना, 'अमुक धर्म को स्थापित होने में इतने सौ वर्ष लगे……….. ..और अमुक धर्म को इतने सौ वर्ष पर हमारे धर्म के पचास वर्षों में ही चालीस लाख अनुयायी बन गए। देखो हमारा धर्म कितना महान है।" ये धर्म अपनी महानता अपने अनुयायियों की संख्या से मान सकते हैं लेकिन सत्य हमेशा सत्य ही रहेगा चाहे उसका एक भी अनुयायी न हो। जैसा कि मैंने बताया था मेरा स्वभाव जीवन के हर पक्ष, हर पहलू व पदार्थ को बारीकी से अवलोकन करने का रहा है । केवल मनुष्य समाज ही नहीं, पशु, पक्षी, पौधे, अपने चारों ओर का वातावरण और किसी की भाव-भंगिमा, प्रतिक्रिया करने का ढंग आदि का मैं सदेव निरीक्षण किया करती थी। इस तरह तुम भी बहुत कुछ सीख सकते हो। हर मिनट तुम कुछ सीख सकते हो, प्रगति कर सकते हो। उदाहरण के तौर पर मानो तुम किसी गली में खड़े हो, बद्यपि गली में खड़ा होना कोई ख़ुशी की बात नहीं, फिर भी यदि तुम वहाँ हो और अपने चारों और दृष्टि घुमाकर अवलोकन करना चाहो कि कैसे कोई खड़ा है, कैसे चल रहा है अथवा खरीद रहा है, कैसे रौशनी पदार्थों पर खेल रही है, कैसे वृक्ष का छोटा सा भाग सहसा सुन्दर लँडस्केप प्रतीत होने लगा है, कितनी छोटी-छोटी किन्तु अनेक वस्तुएं यत्र-तत्र अपने को प्रदर्शित कर रही हैं तो उसी क्षण तुम कुछ सीख लेते हो। केवल सीखते ही नहीं, वह तुम्हारी स्मृति पर छाप छोड़ जाता है।

* ***

अल्जीरिया से लौटने के बाद पेरिस में सात-आठ युवा जनों के साथ मिलकर मेरे यहाँ साप्ताहिक बैठकें हुआ करती थीं जिनमें गम्भीर विषयों जैसे जीवन का लक्ष्य, स्वप्न, मानव एकता, शब्दों एवं विचारों की शक्ति आदि पर वार्तालाप एवं प्रश्नोत्तर हुआ करते थे। कोई एक विषय चुनकर सबको दे दिया जाता था और अगले सप्ताह सब उस पर अपने-अपने विचार लिखकर लाते थे। इन बैठकों को पहली गोष्ठी का विषय था-

"वह कौन सा लक्ष्य है जिसे प्राप्त करना है? सबसे उपयोगी कार्य कौन सा है, और उस लक्ष्य को पाने और कार्य करने के तरीके कौन से हैं? मेरा उत्तर इस प्रकार था, जिस आम लक्ष्य को हमें प्राप्त करना है वह है- सतत प्रगतिशील विश्वव्यापी सामंजस्य का आविर्भाव ।"

पृथ्वी के लिए इस उद्देश्य को प्राप्त करने का उपाय है सबके अन्तःस्थित देवत्व को जागृत करके एवम् सबके द्वारा उसे अभिव्यक्त करके मानव-एकता प्राप्त करना। दूसरे शब्दों में हम सबके अन्दर विद्यमान प्रभु साम्राज्य की स्थापना द्वारा एकता का सृजन करना ।

... करने योग्य कार्य कौनसा है, इस पर मैंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था- "सबसे उपयोगी करने योग्य कार्य यही है है कि जिन आदर्शों को हमें प्राप्त करना है उन्हें प्रथम हम अपने अन्दर सिद्ध करें। उन शाश्वत परम तत्व की समस्त गतियों, धर्मों और गुणों की प्रथम अभिव्यक्ति का पूर्ण प्रतिनिधित्व करें। स्वयं उदाहरण बनकर एक सत्यान्वेषी लोगों के समुदाय द्वारा एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना करें जो प्रभु के पुत्रों का समाज हो। आन्तरिक विकास अर्थात् भागवत ज्योति के साथ सतत् सम्पर्क एवम् एकत्व ही वह एक मात्र अवस्था है। जिसमें मनुष्य विश्व जीवन की महान धारा के साथ सर्वदा सामन्जस्य बनाए रख सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं और व्यक्तिगत अभिरुचियों के अनुसार अपना कार्यक्षेत्र चुन लेना चाहिए, विश्व की इस संगोष्ठी में उसे अपना निजि स्थान चुन लेना होगा जिसे केवल वही ले सकता है और फिर उस स्थान की पूर्ति में अपने आपको इस भाव से जोड़ देना होगा कि वह इस स्थूल संगीत रचना में एक स्वर ही बजा रहा है, तो भी संगीत के माधुर्य और सामंजस्य के लिए उसका स्वर अनिवार्य है तथा उसके स्वर का मूल्य एवं संगीत का सौन्दर्य उसके ठीक-ठीक बजाने मे निहित है । हममें से प्रत्येक व्यक्ति को एक भूमिका निभानी है, एक कार्य करना है। प्रत्येक का एक अपना स्थान है जिसे केवल वही भर सकता है।"

"अपने विशिष्ट कार्य का निश्चित रूप जानने से पहले हमें कार्य की दिशा एवं प्रकृति, उसकी गति, अपने स्वभाव एवं आन्तरिक स्पन्दनों को भली भाँति सीखना जानना चाहिए और उन्हें व्यक्त करने योग्य हो जाने का अभ्यास करना चाहिए।"

* ***

मैं २९ मार्च १९१४ को पांडिचेरी पहुंची थी और उसी दिन तीसरे प्रहर श्री अरविन्द से भेंट की थी। ज्योंही मैंने श्री अरविन्द को देखा, मैंने पहचान लिया कि ये वही हैं जिन्हें अपने ध्यान में मैं देखा करती थी और कृष्ण कहकर पुकारा करती थी। यह एक साक्षात्कार था। और जब तुम जान लेते हो कि प्रभु सामने हैं तो फिर कोई सन्देह या प्रश्न की बात अन्दर नहीं रह जाती। मैंने पूरी तरह अपने बोझ को उनके सामने उतारकर रख दिया.... और एकदम हल्की और प्रफुल्लित हो गई। मैंने पूरी तरह अपने को उनकी दिव्यता के प्रति समर्पित कर दिया। उसके बाद जो कुछ उन्होंने कहा मैंने बिना किसी प्रश्न, सन्देह और हिचकिचाहट के उसे स्वीकार कर लिया।

मैं श्री अरविन्द के चरणों के समीप बैठ गई थी। अपनी आँखें बन्द कर अपने मन को उनकी ओर खोल दिया था। कुछ क्षण ऊपर से एक अनन्त नीरवता का अवतरण हुआ... हर चीज चली – बड़े ऊंचे महान विचार अदृश्य हो गए और शेष रह गई अनिल प्रतीक्षा उस परम तत्व के लिए जो मन के परे था। (माताजी ने इस भेद के अनुभव को इन शब्दों में अपनी डायरी में व्यक्त किया था।)

"कोई परवाह नहीं कि हजारों लोग धनी अज्ञानता में डूबे हुए हैं। वे, जिन्हें हमने कल देखा पृथ्वी पर उपस्थित हैं। उनकी उपस्थिति यह सिद्ध करने के लिए काफी है कि एक दिन आएगा जब अंधेरा औषणी में परिणित हो जाएगा और तुम्हारा राज्य (हे प्रभु!) वास्तविक रूप से पृथ्वी पर स्थापित होगा।"

He seemed the wideness of a boundless sky
He seemed the passion of a sorrowless earth
He seemed the burning of a world-wide Sun
Two looked upon other, soul saw soul.

*वह एक असीम आकाश की विशालता प्रतीत होता था
वह एक दु:खरहित कार्ट का जुनून प्रतीत होता था
वह एक विश्वव्यापी सूर्य की जलन लग रहा था
दो ने दूसरे को देखा, आत्मा ने आत्मा को देखा।*

*"मनुष्य शरीर ग्रहण करते हैं - नहीं जानते क्यों किया?
सारा जीवन उसमें बिताते हैं, नहीं जानते क्यों बिताया? फिर उनका शरीर छूट जाता है और वे नहीं जानते क्यों छूटा ?
और इसी क्रिया को वे बार-बार जन्मांतरों तक दोहराते जाते हैं, अनिश्चित काल तक बिना जाने, बिना पूछे। फिर एक दिन कोई आता है और कहता है सुनो, इस शरीर और इसके जन्म का एक प्रयोजन है।
तुम इसी प्रयोजन को जानने और पाने के लिए यहां हो, अपना अवसर मत चूको।"*

-श्रीमाँ

आश्रम-गतिविधिया

1 जनवरी 2023

नव-वर्ष पर युवा आश्रमवासी एवं प्रशिक्षार्थियों द्वारा आकर्षक खेल-कूद का प्रदर्शन किया गया।

12 जनवरी 2023

स्वामी विवेकानन्द की 160वीं जन्मतिथि पर स्वामी विवेकानंद की आत्मकथा पर आधारित श्री रामकृष्ण मठ द्वारा निर्मित प्रेरणादायक एवं ज्ञानवर्द्धक फिल्म प्रदर्शित की गई।

20 जनवरी 2023

श्री अनिल जौहर की 93वीं जन्म-जयंती पर तारा दीदी ने श्रमिकों को उपहार दिया।
आश्रम के शिक्षार्थियों ने बड़े उत्साह से फुटबॉल और बास्केट-बॉल प्रतियोगिता का आयोजन किया।
जानेमाने गिटार वादक श्री नीलरंजन मुखर्जी ने गिटार वादन प्रस्तुत किया।

26 जनवरी 2023

प्रातः गणतन्त्र दिवस पर हाल ऑफ जॉय में विशेष कार्यक्रम का आयोजन हुआ तथा फिल्म दिखाई गई।
आश्रम की साधिका करुणा दी की पुण्यतिथि पर श्री क्षितिज माथुर ने संगीतमय श्रद्धांजली प्रस्तुत की। श्री चेतन निगम ने हारमोनियम पर और शम्भूनाथ चैटर्जी ने संगत की।

12 फरवरी 2023

आश्रम के 67वें स्थापना दिवस पर कई आयोजन किए गए। आज ही के दिन श्रीमाँ की प्रेरणा से चाचाजी, श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर, ने श्रीअरविंद आश्रम दिल्ली शाखा की स्थापना की थी।
प्रातः डॉ. अपर्णा रॉय ने “एक अलौकिक संस्थापक” की जानकारी दी तथा डॉ मिठू पाल ने संगीतमय प्रस्तुति की।
“आर्ट ऑफ आश्रम – 2023” एक चित्र प्रदर्शनी का अनावरण श्रीमति रीता झुञ्झुंवाला के कर-कमलों से हुआ।
श्रीमति वीणा सावले ने संगीतमय गायन प्रस्तुत किया।

21 फरवरी 2023

श्रीमाँ का जन्मोत्सव आज का दिन हम आश्रमवासियों के लिए बेहद खास दिन होता है। कई दिनों से आश्रम को सजाने-सँवारे में हर कोई लगा था। दिन भर एक खुशी-आनंद का माहौल था, संगीत और स्वर लहरी आश्रम के प्रांगण में गूँजती रही। साधकों और श्रद्धालुओं की अनवरत धारा सी बहती रही। ध्यान कक्ष में संगीत चल रहा था तथा आने वाले सभी श्रद्धालुओं के लिए प्रसाद की व्यवस्था की गई थी। युवाओं द्वारा विशेष कार्यक्रम का आयोजन हौल ऑफ ग्रेस में व्यवस्था की गई थी। सभी शिक्षार्थियों ने लोक नृत्य तथा शारीरक कैशल का अद्भुत प्रदर्शन किया। संध्या के समय आश्रमवासियों द्वारा समाधि पर परेड करते हुए श्रीमाँ को सलामी दी तथा वन्दे मातरम् के निनाद से आश्रम गूँज उठा। संध्या के समय ध्यान-कक्ष में पुन: भक्ति गीत के साथ तारा दीदी द्वारा वाचन हुआ।

SPORT FOR ALL

25 फरवरी 2023

प्रगति मैदान मैं आयोजित अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला के तहत श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा की तरफ से श्री अरविंद के जीवन की झांकी का आयोजन करते हुए उनके योग दर्शन से संबंधित पुस्तकों की प्रदर्शनी में तारा दीदी और उनके सहयोगी...

26 फरवरी 2023

वाटिका रिजॉर्ट में पिकनिक का आनंद लेते हुए श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा के सदस्य

27 फरवरी 2023

आश्रम के ध्यान कक्ष में श्री सिद्धार्थ श्रीवास्तव द्वारा भक्ति संगीत की भावपूर्ण प्रस्तुति ।

28 फरवरी 2023

श्री अनिल कुमार जौहर की पुण्य तिथि पर ध्यान कक्ष में श्रीमती अनीता रे द्वारा भक्ति संगीत प्रस्तुत किया गया एवं तारा दीदी ने सस्वर वाचन किया ।